पंचम अध्याय

प्रज्ञात्मक चेतना

प्रकृष्ट ज्ञान युक्त चेतना ही प्रज्ञात्मक चेतना है। प्रज्ञात्मक चैतन्य निरपेक्ष, अतिमहान्, चरम सौन्दर्य स्वरूप, प्रकाशपुंज तथा आत्मचैतन्य के शब्द गुण का स्रोत है। सन्त कबीर साहब ने अनुराग सागर में त्रिलोकी से ऊपर प्रकृष्ट चैतन्य लोक – (चतुर्थ लोक) सत्तलोक का भव्य, दिव्य, विस्मयकारी एवं चित्तस्फालक वर्णन किया है।

महाप्रकाशवान, तेजोमय समुद्र, प्रकृष्ट चेतनासागर, कबीरसागर अथवा सत्तलोक में पथप्रदर्शक सद्गुरु की कृपा एवं दिग्दर्शन से ही प्रवेश किया जा सकता है। सद्गुरु ही अनुरागी जीव के भवबन्धन काट उसे काल एवं माया के जाल से बचाते हुए सत्त पुरुष के प्रकाश एवं शब्द स्वरूप को लखा सकते हैं। सद्गुरु ही अधिकारी जीव को नामदान कर, उसे सुमिरन तथा अभ्यासादि की युक्ति बताकर शब्द–श्रवण कराते हुए उसकी चेतना का परम चेतना में लय या तारतम्य स्थापित करा सकते हैं। प्रस्तुत अध्याय सात उप–विभागों में विभक्त है।

(क) सद्गुरु महिमा एवं गुरु चतुष्टय

कबीर साहब ने गुरु के बिना ज्ञान–प्राप्ति को कथमपि सम्भव नहीं माना है। निगुरा ज्ञानोपदेशक स्वयं डूबता है और दूसरों को भी डुबा देता है –

निगुरा होय जगत् समुझावे। आप बुड़ै सो जगत् बुड़ावे।।
बिना गुरु नाहि निस्तारा। गुरुहिं गहै सो भवते पारा।।

सद्गुरु ही भवबन्धन काट सकते हैं तथा काल विजयी कर आत्मा रूपी हंस को अनामी देश तक ले जा सकते हैं।

कालहि जीत हंस लै जाहीं। अविचल देश पुरुष जहँ आहीं।।
जहाँ जाय सुख होय अपारा। बहुरि न आवै यहि संसारा।।[1]

जो जीव सद्गुरु पर विश्वास नहीं करेगा वह भवसागर से कथमपि पार नहीं हो सकता है।

कीन विश्वास जीव न तरई। गुरु प्रतीत बिन नरकहिं परई।।
गुरु सम और न दानी भाई। गुरु चरनन चित राखु समाई।।[2]

सद्गुरु दीनदयाल है, कृपाल हैं तथा दया का अथाह सागर हैं। ऐसे सतगुरु की पहचान भी; जिसके समक्ष सद्गुरु नामभेद को प्रकट करते हैं; कोई विरला जीव ही कर सकता है।

कृपासिन्धु गुरु देव, दीन दयालु कृपालु हैं।।
विरले पावहि भेव, जिन चीन्ह्या परगट तहां।।[3]

गुरु को पूर्णतः समर्पित तथा उनकी प्रत्येक रज़ा में राज़ी गुरु मुख शिष्य शब्द को सदैव अपने ह्रदय में धारण करते हैं तथा दिन–रात अमृत रस का पान करते हैं। कामिनी स्त्री के पति प्रेम के समान शिष्य का गुरु के प्रति अनुराग होता है जो हर पल गुरु के तेज को निरखता रहता है। गुरु चन्द्रमा के सदृश है और शिष्य चकोर की भाँति है जो हरपल शशिवत् गुरु का ही ध्यान करके परम शान्ति या आनन्द प्राप्त करता है।

गुरु मुख शब्द सदा उर राखे। निशदिन नाम सुधारस चाखे।।
पियानेह जिमि कामिनि लागे। तिमिर गुरु रूप शिष्य अनुरागे।।
पल–पल निरखे गुरु मुख कान्ती। शिष्य चकोर गुरु शशि शान्ति।।[4]

तथा

गुरु पद कीजै नेह, कर्म भर्म जंजाल तज।
निज तन जाने खेह, गुरु मुख शब्द विश्वास दृढ़।।[5]

पतिव्रता स्त्री का जिस प्रकार दोनों परिवारों में सम्मान होता है उसी प्रकार का गुण शिष्य का होना चाहिये अर्थात् सन्त को समर्पित गुरु भक्त होते हुए भी उसे सांसारिक व्यवहारों का निर्वाह भी दक्षता पूर्वक करना चाहिये, फिर भी सतगुरु से बढ़कर संसार में और कोई भी नहीं है–

पतिव्रता दोउ कुलहिं उजागर। यह गुण गहे संतमति आगर।।
ज्यों पतिव्रता पिया मन लावे। गुरु आज्ञा अस शिष्य जुगावे।।
गुरु ते अधिक और कोई नाहीं। धर्मदास परखहु हिय माहीं।।
गुरु ते अधिक कोई नहिं दूजा। भर्म तजै करि सतगुरु पूजा।।[6]

कबीर साहब पुनः धर्मदास से कहते है कि मान या अहंकार रहित होकर गुरु भक्ति करनी चाहिये। गुरुभक्ति के समान अन्य ज्ञान, यज्ञ, योग, तप, दान–पुण्य, व्रत आदि नहीं हैं। सतगुरु का ज्ञान दीपक के समान है जो सतगुरु के दया के पात्र शिष्य के घट को प्रकाशित कर देता है।

गुरु भक्ति अटल अमान धर्मनि, यहि सरस दूजा नहीं।
जप योग तप व्रत, दान पूजा, तृण सदृश यह जग कहीं।।

तथा

दीपक सतगुरु ज्ञान, निरखेहु संत अंजोर तोहि।।
पावे मुक्ति अमान, सतगुरु जेहि दाया करे।।[7]

गुरु के बिना शून्य में ध्यान करने से मन धोखे में डाल देता है।

सब मूरति परतीत न आवै। शून्य ध्यान धोखेहु मन लावै।।
जो निश्चय है गुरुप्रन धरही। मुक्ति होय टारे नहिं टरही।।[8]

गुरु के ज्ञान रूपी दीपक की चेतना से अपने हृदय के अन्धकार का नाश कर देना चाहिये।

अस कै प्रतीत दृढाय गुरुपद, नेह इस्थिर लाइये।।
गुरु ज्ञान दीपक वार निजउर, मोह तिमिर नशाइये।।
गुरु पद पराग प्रतापतें अब, पुंज निश्चय जावई।
और मध्य युक्ति न तरन की, विश्वास शब्द समावई।।[9]

सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार की भक्ति गुरु के बिना असम्भव है। गुरु शिष्य की रहनी इस प्रकार है –

शिष्य यदि सीप है तो गुरु स्वाँती नक्षत्र, गुरु पारस हैं तो शिष्य लोहा, गुरु मलयागिरि है तो शिष्य भुजंग (सर्प), गुरु समुद्र है तो शिष्य तरंग। गुरु दीपक है तो शिष्य पतंगा, गुरु चन्द्रमा है तो शिष्य चकोर है। गुरु के चरण सूर्य हैं तो शिष्य कमल है। उसका गुरु के प्रति स्नेह है तो गुरु के चरण–कमलों के स्पर्श तथा उनकी दिव्य चेतना के संस्पर्श से; वह शिष्य अपने अन्तःकरण में दर्शन प्राप्त करेगा।

सतगुरु कहै गुरु व्रतधारी। अगुन सगुनविच गुरु आधारी।।
गुरु बिना नहिं होय अचारा। गुरु बिना नाहिं होय भवपारा।।
शिष्य सीप गुरु स्वाती जानो। गुरु पारस शिष लोह समानो।।
गुरु मलय गिरि शिष्य भुजंगा। गुरु गुरु परसि शीतल होय अंगा।।
गुरु समुद्र है शिष्य तरंगा। गुरु दीपक है शिष्य पतंगा।।
शिष्य चकोर गुरु को शशि जानो। गुरु पद रवि कमल शिष विकसानो।।
यदि स्नेह शिष निश्चय लहई। गुरु पद परस दरश हियगहई।।

जब शिषया विधि ध्यान विशेखा। सोई शिष्य गुरु समलेखा।।[10]

गहन–गंभीर संसार सागर से मुक्ति का उपाय गुरु–नाम ही है।

यह भव अगम अथाह। नाम प्रेम दृढ़ के गहे।।
लेह कृपा गुरु थाह। गुरु गिरा कडिहार मिले।।[11]

जैसे सर्प अपनी मणि से प्राणों के समान प्यार करता है उसी प्रकार शिष्य को गुरु से प्रेम करना चाहिये तथा पुत्र–पत्नी सभी का मोह छोड़कर अनासक्त भाव से रहते हुए 'हंस' गति को धारण कर सतलोक के मार्ग प्राप्ति का चिन्तन करना चाहिये। कोई विरला शूर अर्थात् विरला शिष्य ही इस मार्ग पर चलता है –

जस भुवंगम मणि जुगावे अस शिष गुरु आज्ञा गहे।।
सुत नारि सब बिसराय विषया हंस होय सत पद लहै।।
गुरु वचन अटल अमान धर्मनि सहै विरला शूर हो।।
हंस हो सतपुर चले तेहि जीवन मुक्ति न दूर हो।।

गुरु मुख शिष्य अपने हृदय रूपी दर्पण में गुरु स्वरूप का ही दर्शन करता है जिससे उस पर काल का प्रभाव अल्प हो जाता है। एक टक होकर जब शिष्य गुरु का ही ध्यान करता है तब उसके मोह–भ्रम सब छट जाते हैं और दीपक के प्रकाश के समान ज्ञान–प्रकाश से मोह भ्रम के नाश हो जाने पर गुरुमुख शिष्य की चेतना परम चेतना की ओर उन्मुख हो उसी में लय करने लगती है जैसे बिन्दु समुद्र में जाकर समुद्र रूप हो जाती है उसी प्रकार उसकी आत्मा का परमात्मा में लय हो जाता है अर्थात् चेतना के द्वैत का भाव समाप्त हो जाता है।

जब शिष हृदय मुकुर मलताहीं। गुरु स्वरूप तबहीं दरसाहीं।
जब सिख निज हिय गुरु पद राखे। मेटे सबहि काल की साखे।।
जौं लागि सात पांच की आसा। तौ लग गुरु नहिं निरखे दासा।।
इक पत शिष्य गुरु पद लागे। छूटे मोहे ज्ञान तब जागे।।
दीपक ज्ञान हृदय जब आवे। मोह भर्म तब सबै नशावे।।
उलटि आय सतगुरु कहँ हेरा। बुन्द सिन्धु का भयो निबेरा।।
सिन्धुहि बुन्द समाना जाई। कहे कबीर मिटी दुचिताई।।[12]

जो जीव अपने गुरु में विश्वास नहीं करेगा वह भवसागर से पार नहीं हो सकता। गुरु के बिना वह नरक में जायेगा। संसार में अनेक विध दानी पुरुष हैं किन्तु सद्गुरु सर्वोत्तम दानी हैं जो 'नामदान' द्वारा जीव की निकृष्ट गति को छुड़ाकर

सद्कर्मों की प्रेरणा देते हैं। वे मनुष्य से भक्ति कराकर परमात्मा से मिलाते हैं और शत्रु–मित्र अथवा सद्–असद् का विवेक जाग्रत कराके उसे निजधाम पहुँचा देते हैं।

कीन विश्वास जीव नहिं तरई। गुरु प्रतीति विनु नर नहिं वरई।
गुरु सम और न दानी भाई। गुरु चरनन चितु राखु समाई।।

तथा

दानी और न दूसरा जग, गुरु मुक्ति दानी जानिया।।
अधम चाल छुड़ाय के गुरु, ज्ञान अंग लखानिया।।
हंसहि भक्ति दिढ़ावहीं दे, अंक बीरा नाम हो।।
दुष्ट मित्र चिन्हाय के, पहुँचावही निज ठाम हो।।[13]

शिष्य धर्मदास से भक्ति के महत्त्व को बताते हुये कबीर साहब कहते हैं कि ईश्वर को तो भक्त की हंसगति अर्थात् चित्त की शुद्धि एवं प्रेम–प्रीति से ही प्यार होता है। एक उद्धरण से वे इस बात को समझाते हुए कहते हैं कि सगुण भक्ति में जैसे कोई भक्त मिट्टी लाकर स्वयं अपने भगवान् की मूर्ति गढ़ लेता है और उसको सृष्टिकर्त्ता मानता हुआ उस पर चावल, पुष्पादि चढ़ाता है। किसी अदृश्य प्रेत का ध्यान करता हुआ अपनी प्रीति को भंग नहीं होने देता। इस प्रकार धोखे में अनायास ही जो प्रेम उसके हृदय में उत्पन्न होता है, वही सजीव हो उठता है। उसी प्रकार का अमोल–अपार भक्ति निष्ठ हंस जीव सहज ही परमशक्ति का भक्त हो जाता है प्रेम–प्राण है तथा गुरु–वाणी अमृत है जिसका पान क्लिष्ट दुर्मति का नाशक है। कबीर साहब कहते है कि हमारा गुरु नाम है किन्तु गुरु परम पुरुष से भिन्न नहीं होता इसीलिये वह जीव की मुक्ति कराने में सक्षम होता है। गुरु–चरण प्रताप से निःसृत तेजपुंज से निश्चय ही शब्द जाग्रत होगा, इसके अलावा मुक्ति की और कोई युक्ति नहीं है।

सर्गुण भाव पेखु धर्मदासा। कस दृढ़ गह प्रतीत विश्वासा।।
कर्मी जीवन देखु विचारी। कस दृढ़ गहे प्रतीत सम्हारी।।
आपहि लै आवै नर माटी। करता कहँ मूरति गढ़ ठाटी।।
तापर अक्षत पुहुप चढ़ावे। प्रेम प्रतीत ध्यान मन लावे।।
करता कर थापे पुनि ताही। भंग प्रतीत होय नहिं जाही।।
अस धोखहु महँ प्रेम समावे। सोई प्रेम सजिव बन आवे।।

सो जिव होय अमोल अपारा। साहिब को है हंस पियारा।।
उन जीव को प्रेम बखाने। कैसे दृढ़ होय धोख लपटाने।।
गुरु नाम हम आप कहावा। गुरु पुरुष नहिं भिन्न बताया।।
x x x x x
जो निश्चय है गुरु प्रन धरही। मुक्ति होय टारे नहिं टरही।।
ऐसे कर जो विश्वास दृढ़ावै। गुरु तजि चित्त अनत नहिं लावै।।
यहि रहनी को हंस अमोला। प्रेम रंग जो रंगे चोला।।
प्रेम जानि हैं अमृत गिरा गुरु। अँचवत होत खानि दुरमत दुरु।।
x x x x x
गुरु पद पराग प्रतापतें अब, पुंज निश्चय जावई।।
और मध्य युक्ति न तरन की, विश्वास शब्द समावई।।[14]

गुरु भी अनेक विध है किन्तु सच्चा वही है जो शब्द ज्ञान की युक्ति बता सके अर्थात् शब्द चेतना का ज्ञान करा सके। सच्चा गुरु ही शब्द लखा सकता है और उसी शब्द श्रवण से शिष्य मुक्ति पद पा सकता है।

गुरु गुरुन में भेद विचारा। गुरु–गुरु कहै सकल संसारा।।
गुरु सोई जिन शब्द लखाया। आवागमन रहित दिखलाया।।
गुरु सजीवन शब्द लखावे। जाके बल हंसा घर जावे।।
ता गुरु सौं कहु अन्तर नाहीं। गुरु और शिष्य मता एक आहीं।।[15]

तथा

गुरु बहुत हैं संसार में सब, फँदे कृत्रिम जाल हो।
सतगुरु बिना नहिं भ्रम मिटे, बड़ा प्रबल काल कराल हो।।[16]

जो शिष्य प्रतिदिन अभ्यास करता हुआ अपनी आत्मा या सुरत को गुरु के चरण–कमलों से जोड़ता है उन पर सतगुरु की विशेष दया होती है। वे उस शिष्य के काल–कर्म के फन्दे को काट देते हैं।

निशिदिन सुरत गुरु सो लावे। साधु सन्त के चितहि समावे।।
जिन पर दाया सतगुरु करै। तिनका फाँस करम सब जरै।।

जो व्यक्ति नितप्रति करनी अर्थात् सुरत को गुरु के चरण–कमलों से जोड़ने का अभ्यास करता है उसको सतगुरु निजलोक पहुँचा देते हैं। इसके अतिरिक्त किसी

भी प्रकार की सेवा करते हुए जो भक्त अपने मन में किसी भी प्रकार के फल की आकांक्षा नहीं रखता; सतगुरु उसके समस्त बन्धन काट देते हैं।

करनी करै औ सुरति लगावै। ताको लोक सतगुरु पहुँचावा।।
सेवा करि मन राखै न आसा। ताका सतगुरु काटे फांसा।।
गुरु चरणन जो राखे ध्याना। अमर लोक वह करत पयाना।।[17]

योगी पुरुष योग–साधना करते हैं किन्तु बिना गुरु के वे भवसागर से पार नहीं हो सकते। जो शिष्य गुरु की आज्ञानुसार चलता है, गुरु उसको भवसागर से पार लगा देते हैं। कबीर साहब यहाँ तक कहते हैं कि जो जीव गुरुभक्त हैं ऐसे साधु और गुरु में कोई अन्तर नहीं है।

योगी योग साधना करई। बिना गुरु सो भव नहिं तरई।।
शिष्य जो गुरु आज्ञा धारी। गुरु की कृपा होय भवपारी।।
गुरु भगता जो जिव आही। साधु गुरु नहिं अन्तर ताही।।
साँचा गुरु ताहि कर माने। साधु गुरु नहिं अन्तर आने।।[18]

सत्यनाम तो अमृत है, अमोल है, अविचल है। काग गति को छोड़, हंस गति धारण कर गुरु चरणों में लौ (प्रीति) लगानी चाहिये जिससे कि सतलोक की प्राप्ति हो सके। गुरुमुख जो शब्दाभ्यासी हैं अपने शरीर को नश्वर समझते हुए गुरुचरणों में प्रीति लगाये रहते हैं –

सतनाम अमी अमोल अविचल, अंक वीरा पावई।।
तजि काग चाल मराल गति गहि, गुरु चरण लौ लावई।।

x x x x

गुरुपद कीजे नेह, कर्म भर्म जंजाल तजि।
निज तन जाने खेह, गुरु मुख शब्द प्रतीति करि।।[19]

अतः गुरु धारण करना अवश्यम्भावी है। गुरु तो ज्ञानी शुकदेव तथा नारद को भी धारण करने पड़े थे।

शुकदेव वृत्तान्त

शुकदेव वेदव्यास जी के पुत्र थे जो अपनी माता के उदर में भी योगीश्वर बनकर रहे थे। उस समय और कोई उन शुक देव के समकक्ष नहीं था किन्तु उनको भी गुरु धारण करना पड़ा। शुकदेव जी इतने तेजस्वी थे कि वे अपने तप के प्रभाव से

सीधे बैकुण्ठ धाम में विष्णु के पास पहुँच गये किन्तु गुरु के बिना वे भी वहाँ न रुक सके। विष्णु उनसे बोले कि यहाँ बैकुण्ठ में गुरु के बिना किसी भी तप का प्रभाव नहीं होता। निगुरा मुझे अच्छा नहीं लगता। गुरु के बिना चौरासी लाख योनियों के आवागमन के चक्र में रहोगे। अतः तुम शीघ्र यहाँ से जाओ और जाकर गुरु धारण करो तभी यहाँ ठहर पाओगे। यह सुनकर शुकदेव जी तुरन्त वहाँ से चल दिये और उन्होंने राजा जनक को अपना गुरु स्वीकार (धारण) किया।

नारद भी ब्रह्मा पुत्र थे। उनकी कथा सभी जानते हैं। वे उच्च कोटि के महात्मा थे। उनको भी गुरु धारण करना पड़ा।

शुकदेव भये गरभ जोगेश्वर। उन समान नहिं थाप्यो दूसर।।
तप के तेज गये हरि धामा। गुरु बिन नहीं लहे विश्रामा।।
विष्णु कहे ऋषि कहँवा आये। गुरु विहीन तप तेज भुलाये।।
गुरु विहीन नर मोहि न भावे। फिर फिर जो इन संकट आवे।।
जाहु पलटि गुरु करहु सयाना। तब पैहो यहवां अस्थाना।।
सुनि मुनि शुकदेव वेगि सिधाये। गुरुविहीन तहँ रहन न पाये।।
जनक विदेक कीन्ह गुरु जानी। हरषि मिले तब सारंग पानी।।
नारद ब्रह्मा सुत बड़ ज्ञानी। यह सब कथा जगत में जानी।।
और देव ऋषि मुनिवर जेते। जिन गुरलीन्ह उतर सो तेते।।
जो गुरु मिले तो पंथ बतावे। सार–असार परख दिखलावे।।[20]

गुरु चतुष्टय

कबीर साहब धर्मदास से कहते हैं कि संसार में परम चेतना के ज्ञान एवं नामदान के लिए चार गुरु संसार में प्रकट होंगे। प्रथम चतुर्भुज जी, द्वितीय बंकेजी, तृतीय सहितेजी और चतुर्थ धर्मदास आप होंगे। ये गुरु चतुष्टय नामदान के साथ जीव चेतना का परम चेतना में लय का मार्ग बतायेंगे। इस प्रकार ये गुरु चतुष्टय जीव को चौरासी के बन्धनों से निकलाकर जीवात्मा का परमात्मा से मिलन करायेंगे।

सुनहु संत यह ज्ञान अनूपा। गजथलदेस परमोध्योभूपा।।
राय बंकेज नाम तेही आही। दीनेउ सार शब्द पुनि ताही।।
कीन्हो ताहि जीवन कडिहारा। सो जीवन का करैं उबारा।।
शिलामिलीदीप तहां चहि आये। सहते जी एक सन्त चिताये।।
ताहू को कडिहारी दीन्हा। जब उन मोकहँ निजकर चीन्हा।।

तहाँ ते चल आये धर्मदासा। राय चतुरभुजपति जहँ वासा।।
ताकर देश आदि दरभंगा। परखिसि मोहि सत पर संगा।।

X X X X

माया मोह न तनिको कीन्हा। अमर नाम तब ताही दीन्हा।।
ताहूँ कहँ कडिहारी दीन्हा। चतुरभुज शब्द हेत कर लीन्हा।।[21]

आगे सन्त कबीर साहब धर्मदास से कहते हैं –

चतुर्भुज, बंकेज सहतेज और चौथे तुम अहौ।।
चार गुरु कडिहर जग के वचन यह निश्चय गहौ।।
यही चार अंश संसार में, जीव काज प्रगटाइया।।
स्वसंवदेन सो इन संग दियो, जेहि सुनि काल भगाइया।।
चरों में धर्मदास, जम्बुद्वीप के गुरु सहि।।
व्यालिसवंश विलास तरै, जीव तेहि शरण गहि।।[22]

इनमें धर्मदास जम्बुद्वीप के रहने वाले हैं। आगे जिन व्यालिस वंशों का वर्णन किया जायेगा वे जीव भी तुम्हारी शरण में आकर मुक्ति प्राप्त करेंगे।

इन सभी सन्तों की निर्मल रहनी–गहनी थी। कुल परिवार सब त्याग कर ये सभी जीव–सेवा में संलग्न रहे।

हंस निरमल ज्ञान रहनी, गहनी नाम उजागरा।
कुल कानि सबै विसारि विषया, जौहरी गुण नागरा।।[23]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक **कबीर** जो राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित है, में धर्मदास, चतुर्भुजदास, राय बंकेजी और शाममल्ला द्वीप और मानपुर के हीरामीरांसजी के बारे में कहा है कि ये कबीर की वाणियों का प्रचार करेंगे। उन्होंने बीजक के अलावा कबीर की अन्य रचनाओं की भी ओर संकेत किया है।

"परन्तु मैं नहीं मानमा कि बीजक के बाहर कबीरदास ने कुछ कहा ही नहीं। कबीर पंथियों में कबीरदास के स्वयं वेद के चार भेद बताये गये हैं – 1. कूटवाणी, 2. टकसार, 3. मूलज्ञान, 4. बीजक–वाणी। इनमें कूटवाणी को महात्मा धर्मदास ने प्रचारित किया था। बाकी के बारे में कहा जाता है कि उन्हें क्रमशः कर्नाटक के

चतुर्भुजदास, दरभंगा के राय बंकेजी और शाममल्ला द्वीप और मानुपर के हीरामीरांसजी प्रचारित करेंगे।"[24]

यहाँ धर्मदास, चतुर्भुजदास, बंकेजी के नाम यथावत् हैं किन्तु सहतेजी के स्थान पर गुरु हीरामीरांसजी का नाम लिया गया है। इन सभी में धर्मदास कबीर साहब का सुकृत (अंश) तथा प्रिय शिष्य था।

(ख) काल के द्वादश पंथों की चेतना

परम पुरुष की आज्ञानुसार जीवों के दुःख निवारण हेतु जब कबीर साहब नीचे उतर रहे थे तो काल के साथ उनका वार्तालाप हुआ जिसका वर्णन पूर्व अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ अब द्वादश पंथों का वर्णन किया जा रहा है।

सत्पुरुष की आज्ञा से जब कबीर साहब संसार में जीवों के उद्धार हेतु अवतरित हो रहे थे तब काल–निरंजन ने उनसे कहा कि वह उन्हीं की तरह **द्वादश पन्थ** चलाकर उनकी ही तरह नामदान करेगा। वे नाम–चेतना के प्रसारक उसके ही दूत होंगे। जीव सत्य–असत्य चेतना को परख नहीं सकेंगे। निरंजन यह भी कहता है कि पहले उसकी अंश–चेतना संसार में जायेगी तदनन्त कबीर साहब की।

इतना सुनत बोला अन्याई। सुनौ कबीर में कहौं बुझाई।
तुम्हरो नाम लै पंथ चलायव। यहि विधि जीवन धोख लखायव।।
द्वादश पंथ करब हम साजा। नाम तुम्हारे करब अवाजा।।

x x x x

प्रथम अंश हमारा जाई। पीछे अंश तुम्हारा भाई।।

x x x x

हम नाम पथ प्रकाश करिहै, जीव धोखा लावई।।
भूत भेद न जीव पावे, जीव नरकहिं नावई।।
जिमि नाद गावत पारधीवश, नाद मृग कहँ कीन्हेऊ।।
नाद सुनि दिंग मृग आयो, जब चोट तापर दीन्हेऊ।।
तस यम फन्द लगाय, चेतन हारा चेति है।।
वचन वंश जिन पाय, ते पहुँचे सतलोक कहैं।।[25]

शिष्य धर्मदास के द्वारा प्रश्न किये जाने पर कबीर साहब विधिवत् द्वादश वंशों का कथन करते है।

(1) मृत्यु अन्धा दूत का पन्थ – कबीर साहब द्वारा धर्मदास को दिये गये वचनानुसार मृतु अन्धा दूत (काल चेतना) संसार में पहले आया। इसीलिये सत्पुरुष की आज्ञा (सतचेतना) रूप कबीर जी जीवों को बचाने के लिए पीछे–पीछे संसार में अवतरित हुए।

प्रथम पन्थ का भाखों लेखा। धर्मदास चित करो विवेका।।
मृतु अन्धा इक दूत अपारा। तुम्हरे गृह लीन्हों अवतारा।।
जीवन काल होय दुःखदाई। बार–बार मैं कहों चिताई।।[26]

(2) तिमिर दूत का पन्थ – दूसरा तिमिर दूत अहीर जाति का होगा और वह धर्मदास के बहुत से ग्रन्थों की चोरी करेगा तथा अपना पृथक् पन्थ चलायेगा।

दूजा तिमिर दूत चल आवे। जात अहीरा नफर कहावे।
बहुतक ग्रन्थ तुम्हारा चुरैहैं। आपन पंथ नियार चलै है।[27]

(3) अन्ध अचेत दूत का पन्थ – काल चेतना के तीसरे पंथ का चलाने वाला अन्धा–अचेत दूत होगा। वह कामना सहित तुम्हारे पास आयेगा और सुरत गोपाल नाम से प्रसिद्ध होगा।

पन्थ तीसरे तोहि बताऊँ। अन्ध अचेत सो दूत लखाऊँ।।
होय खवास आय तुम पासा। सुरत गुपाल नाम परकासा।।
अपनो पंथ चलावै न्यारा। अक्षर योग जीव भ्रमडारा।।[28]

(4) मनभंग दूत का पन्थ – चौथे मनभंग दूत का पंथ मूपंथ (मूल पंथ) होगा यह लूदी नाम से जीवों को बताएगा और इसी नाम को पारस बतायेगा। वह कहेगा जैसे लोहा पारस के साथ लगकर स्वर्ण हो जाता है तदवत् लूदी नाम को जपने से इसकी चेतना से काया–कल्प होगा। ये सुमिरन में झंग शब्द सुनने की बात भी कहेंगे।

चौथा पन्थ सुनो धर्मदासा। मनभंग दूत करै परकासा।।
कथा मूल ले पन्थ चलावे। मूपन्थ कहि जगमहिं आवे।।
लूदी नाम जीव समुझाई। यही नाम पारस ठहराई।।
झंग शब्द सुमिरन मुख भारवे। सकल जीव थाका गहि राखे।।[29]

(5) ज्ञानभंगी दूत का पन्थ – ज्ञान भंगी नामक पाँचवे पंथ को यह दूत चलायेगा। वह नाम की गमता को स्वयं तो पहचानेगा नहीं किन्तु भूत–प्रेत के जादू–टोनों में लोगों को फँसाये रखेगा। वह अपने पंथ का नाम **टकसार** रखेगा–

पंथ पांचों सुनो धर्मनि। ज्ञान भंगी दूत जो।।
पंथ तिहिटकसार है सुर। साधु अगम भाख जो।।
जीभ नेत्र ललाट के सब रेखा जिव के परखावई।।
तिलमसा परिचय देखि के तब जीव धोख लगवावई।।[30]

(6) मनमकरन्द दूत का पन्थ – छठा पन्थ मन मकरन्द नाम का दूत कमाली नाम से अपना पन्थ चलायेगा और सारे जीवों को अपनी काल चेतना से झिल–मिल ज्योति के दर्शन करायेगा किन्तु जीव ने जब दयाल–चेतना और काल चेतना को परखा ही नहीं तब वह दयाल के दायरे की ज्योति और काल के दायरे की ज्योति में भेद कैसे कर सकता है।

छठे पन्थ कमाली नाऊ। मन मकरन्द दूत जग आऊ।।
मुरदा माहिं कीन्ह तिहि वासा। हम सुत होय कीन परकासा।।
जीवहि झिलमिल ज्योति दृढ़ाई। यहि विधि बहुत जीव भरमाई।।
जौं लगि दृष्टि जीवकर होई। तौं लगि मिल झिल देखो सोई।।
दोनों दृष्टि नाहिं जिन देखा। कैसे झिलमिल रूप परेखा।।[31]

(7) चित भंग दूत का पन्थ – सातवें का नाम चितभंगाा होगा जो जीवों के अनेक विधि रूपरंग बतायेगा। वह अपने पंथ को **'दौनपंथ'** के नाम से चलायेगा। स्वयं को वह ब्रह्मा कहेगा और गुरु पूजा पर बल देगा। श्री रामचन्द्र जी ने भी वसिष्ठ को गुरु धारण किया था इस प्रकार उदाहरण देकर गुरु पूजा में लगायेगा। नारद के द्वारा गुरु का अपमान करने पर उन्हें नरक मिला, इस प्रकार के किस्से सुनाकर जीव को भ्रमित करेगा।

साते दूत आदि चितभंगा। नाना रूप बोल मन रंगा।।
दौन नाम कह पन्थ चलावे। बोलनहार पुरुष ठहरावे।।
पाँच तत्त्व गुण तीन बतावे। यहि विधि ऐसा पन्थ चलावे।।
बोलत बचन ब्रह्म है आपा। गुरु वसिष्ठ राम किमि थापा।।
कृष्ण कीन्ह गुरु की सेवकाई। ऋषि मुनि और गने को भाई।।
नारद गुरु कह दोष लगावा। ताते नरक वास भुगतावा।।[32]

(8) अकिलभंग दूत का पन्थ – आठवां पन्थ अविकल भंग चलायेगा। वह वेद, कुरान, रामायण आदि तथा कुछ–कुछ कबीर पन्थ की निर्गुण बातों को लोगों को समझायेगा और स्वयं को ब्रह्म ज्ञानी कहेगा।

अब मैं आठवें पन्थ बताऊँ। अविकल भंग दूत समुझाऊँ।।
परमधाम कहि पंथ चलावे। कछु कुरान कछु वेद चुरावे।।
कुछ कुछ निर्गुण हमरो लीन्हा। तारतम्य पोथी इक कीन्हा।।
राह चलावे ब्रह्म का ज्ञाना। करमी जीव बहुत लपटाना।।[33]

(9) विशम्भर दूत का पन्थ – नवां पन्थ विशम्भर दूत का होगा। वह आकर राम और कबीर का पंथ चलायेगा और स्वयं को राम और कबीर कहेगा और पुण्य–पाप के मध्य भेद नहीं करेगा।

नववें पन्थ सुनो धर्मदासा। दूत विशम्भर केर तमासा।
राम–कबीर पन्थ कर नाऊ। निरगुण सरगुण एक मिलाऊ।।
पाप पुण्य कहैं जाने एका। ऐसे दूत बनावे टेका।।[34]

(10) नकटा नैनन दूत का पन्थ – जो दसवां पन्थ चलायेगा उसका दूत नकटा नैनन कहलायेगा। वह **मतनाम** कहकर पन्थ चलायेगा और चारों वर्णों के लोगों को एक करके कहेगा कि परमात्मा तुम्हारे अन्दर है। सतपुरुष को स्वयं जानता नहीं और जीवों को ज्ञान देगा।

अब तैं दशवां पन्थ बताऊँ। नकटा नैन दूत कर नाऊँ।।
मतमानी कह पन्थ चलावै। चार वरण जिव एक मिलावै।।

x x x x x

सतगुरु शब्द न चीन्हें भाई। बांधे टेक नरक जिव जाई।।
काया कथनी कहि समुझावे। सत्य पुरुष की राह न पावे।।

(11) दुरगदानी दूत का पन्थ – ग्यारहवें पन्थ को चलाने वाला दुरगदानी दूत होगा। अभिमानी दूत उससे प्रेम करेंगे।

पंथ इकादश कहों विचारा। दुरग दानि जो दूत अपारा।।
जीवपंथ कहि नाम चलावे। काया थाप राज समुझावे।।

x x x x x

जो जिव होय बहुत अभिमानी। सुनके ज्ञान प्रेम अति ठानी।।[35]

(12) हंसमुनि दूत का पन्थ – कबीर दास जी धर्मदास से कहते हैं कि जो बारहवाँ पन्थ चलेगा तदनुसार एक दूत हंस बनकर जग में आयेगा। वह पुनः जन्म लेता रहेगा मरता रहेगा और अपना पन्थ चलाता रहेगा तथा जीवों को ज्ञान देता रहेगा और अपने वर्चस्व से अपने को कबीर ही कहलाना प्रारम्भ कर देगा। ऋद्धि–सिद्धि से लोगों को प्रभावित करके उन्हें नरकों का भागी बनाएगा।

अब कहुँ द्वादश पंथ प्रकाशा। दूत हंस मुनि करे तमाशा।
वचन वंस घर सेवक होई। प्रथम करे सेवा बहु तोई।।
पाछे अपने मत प्रगटावे। बहुतक जीव फंद फँदावे।।
अंश बंश का करे विरोधा। कछु अमान कछु मान प्रबोधा।।
यहि विधि यम बाजी लावै। बारह पंथ निज अंश प्रगटावे।।

X X X X X

नाम कबीर घरावे आपा। कथित ज्ञान काया तहँ थापा।।
जब–जब जनम धरे संसारा। प्रकट होय के पंथ पसारा।।[36]

कबीर साहब धर्मदास से कहते हैं कि अब तुम इस काल–चेतना से जीवों को मूढ़ बना देने वाले इन दूतों के विषय में अच्छी प्रकार से जान लो और भ्रमित मत हो। वस्तुतः सारे उपद्रवों का मूल काल पुरुष की चेतना है और एकमात्र सतचेतना से ही इसका नियन्त्रण सम्भव है।

(ग) चेतना प्रसारक ब्यालीस वंश

काल के बारह पन्थ जीव–चेतना को भ्रमित करने के लिए फैलाये हैं। धर्मदास जी सत्सुकृत के अंश है। उनके पुत्र चूड़ामणि और उनके अंश रूप बयालीस वंशों ने नामदान कर जीव को चैतन्य किया। कबीर साहब धर्मदास से कहते हैं कि उनके चेतन वचन उस दीपक की ज्योति की भाँति हैं जो अन्धकार में प्रकाश करता है। जो जीव उनके वचनों को ध्यान से सुनेगा, अपने ध्यान को एकाग्र कर उनमें आसक्ति करेगा वह काल चेतना से ग्रसित नहीं हो पावेगा –

अस काल परबल सुनहु धर्मनि करे छलमति आयके।
ममवचन दीपक दृढ़ गहे, मैं लेहुँ ताहि बचायके।।
अंश हंसन तुम चितायउ, सत्य शब्दहिं दान ते।।
शब्द परखे यमहिं चीन्हे, हृदय दृढ़ गुरु ज्ञान ते।।[37]

कबीर साहब के कहने पर धर्मदास ने अपने पुत्र दास नारायन (मृत्यु अन्धा काल दूत) को घर से निकालकर कबीर साहब से नाम दान लिया और पूछने लगा हे हंसों के स्वामी ! बताइये जीव किस प्रकार से भवसागर से पार हो सकता है दास नारायन के निष्कासित कर देने से उसका वंश कैसे चलेगा। वस्तुतः कबीर साहब जब सत्तपुरुष की आज्ञा से जीव कल्याणार्थ धरा पर अवतरित हो रहे थे उस समय काल से उनका झगड़ा हुआ था। काल ने उनसे कहा कि संसार में पहले मुझ काल का अंश जायेगा तब तुम्हारा चैतन्य अंश। धर्मराज ने कबीर साहब को दिखाया कि यह जो बैठा है, इसका नाम मृतंध है। यह धर्मदास के घर नारायण दास के नाम से जन्म लेगा। नारायण दास धर्मदास के विपरीत चलता था। कबीर साहब जब धर्मदास के घर सभी परिवार के सदस्यों को नाम–दान करने लगे, नारायण दास, वहाँ से चला गया। छोटे भाई रूपदास के द्वारा बुलाये जाने पर भी वह नहीं आया। पिता धर्मदास के द्वारा बलपूर्वक पकड़कर कबीर साहब के सामने लाये जाने पर वह पीठ करके खड़ा हो गया अतः धर्मदास ने, इन आदतों के कारण उसे घर से निष्कासित कर दिया और आगे अपने वंश के विषय में सोचने लगे –

कैसे पंथ करौं परकासा। कैसे हंसहि लोक निवासा।
दास नरायन सुत जो रहिया। काल जान ताकँह परिहरिया।।

x x x x x

कैसे बंस हमारो चलि है। कैसे तुम्हरो पंथ अनुसरि है।।
आगे जेहिते पंथ चलाई। ताते करों बिनती प्रभुताई।।[38]

तब कबीर साहब कहते हैं कि अकाल पुरुष का पुत्र नौतम, जो तुम्हारे घर जन्म लेगा और जिसका नाम तुम्हें चूणामणि रखने के लिए कहा गया है वह नाम–चेतना से लोगों का भव–निस्तारक होगा।

नौतम सुरति पुरुष के अंशा। तुव गृह प्रगट होइ है वंशा।
वचन वंश जग प्रगटे आई। नाम चुणामणि ताहि कहाई।।
पुरुष अंश के नौतम वंशा। काल फंद काटे जिव शंसा।।[39]

पुनः वे कहते है कि यही कालः नामदान से जीव चेतना को जाग्रत कर उन चैतन्य हंसों (जीवात्माओं) को सतलोक ले जायेगा।

कलि यह नाम प्रताप धर्मनि, हंस छूटे कागसो।।
सत्तनाम मन बिच दृढ़ गहे, सो निस्तरे यम जाल सो।।
यम तासु निकट न आवई, जेहि वंश की परतीति हो।
कलि काल के सिर पाँव दैं, चले भव जल जीति हो।।[40]

पुनः धर्मदास अपनी इच्छा प्रकट करते हुए कहते हैं कि वह उस सतपुरुष के अंश को देखना चाहता है जो उसके वंश को चलायेगा। कबीर साहब से धर्मदास को अपनी दया से अपने अंश मुक्तामणि (चूड़ामणि) का दर्शन कराने के लिए उनकी चेतना को एकाग्र करने को कहा और अपने अंश मुक्तामन के दर्शन धर्मदास को करा दिये।

सुन साहिब अस बचन उचारा। मुक्तामणि तुम अंश हमारा।।
अति अधीन सुकृत हठलायी। तिन कहैं दर्शन देहु तुम आयी।।
तव मुक्तामणि क्षण इक आये। धर्मदास तब दर्शन पायो।।[41]

जैसे चकोर रात्रि में चन्द्रमा के दर्शन पाकर प्रसन्न होता है उसी प्रकार धर्मदास आनन्दित हुए और कबीर साहब के चरण पकड़ लिये तथा आगे होने वाले वंशों के विषय में पूछने लगे –

गहि के चरण परे धर्मदासा। अब हमरे चित पूजी आसा।।
बारम्बार चरण चित लाया। भले पुरुष तुम दर्श दिखलाया।।

x x x x x

अब प्रभु दाया करो तुम ज्ञानी। वचन वंश प्रगटे जग जानी।।
आगे जेहि ते पंथ चलाई। तेहि ते करो बिनती प्रभुताई।।[42]

कबीर साहब ने धर्मदास को परमात्मा के नाम का एक ताबीज पत्नी आमीना की भुजा पर बाँधने को कहा। दशवें मास में धर्मदास के पुत्र ने जन्म लिया जिसका नाम उन्होंने चूड़ामणि रखा।

लिखो पान पुरुष सहिदाना। आमिन देहु पान परवाना।।
धर्मदास परवाना दीन्हा। आमिन आय दण्डवत कीन्हा।।
दसों मास पूजी जब आसा। प्रगटे अंश चूरामणि दासा।।
कहिये अगहन मास बखानी। शुक्ल पक्ष सातम दिन जानी।।
मुकतायन परगटि जब आये। द्रव्यदान औ भवन लुटाये।।[43]

इस प्रकार जीवों के कल्याण के लिए, उनको काल–चेतना के प्रभाव से बचाने हेतु दयाल चेतना अथवा सत्तपुरुष के अंश मुक्तामणि, चूरामणि के रूप में प्रकट हुए। पर्याप्त समय व्यतीत होने के पश्चात् कबीर साहब ने आरती की सारी सामग्री मँगवाई और सर्वप्रथम चूरामणि को नाम–दान किया और उससे कहा कि आगे तुमसे बयालीस गद्दियाँ होंगी। हे धर्मदास तुम तो प्रथम हो। दूसरा तुम्हारा पुत्र चूरामणि है। इसके बाद क्रमशः ब्यालीस अंश जन्म लेकर अपनी नाम चेतना से जीवों को चैतन्य कर भवसागर से पार लगायेंगे। चूड़ामणि को कहते है कि इन ब्यालीस वंशों से भविष्य में साठ शाखाएं होगीं तथा उन शाखाओं में से दस हजार शाखाएं और चलेंगी। इस प्रकार तुम्हारे वंश से ही सबका उद्धार होगा और तुम्हारे समान तुम्हारी शाखाओं का यश होगा।

तुमते वंश बयालिस होई। सकल जीव कहँ तारैं सोई।।
तिनसो साठ होइ हैं शाखा। तिन शाखनते होइ हैं पर शाखा।।
दश सहस्त्र परशाख तुव है$_{व}$। वंशन साथ सबै निरवहि हैं।
वंश पुरुष के रूप, ज्ञान जौहरी परखि हैं।
होवे हंस स्वरुप, वंश छाप जो पाई है।[44]

इस प्रकार धर्मदास तथा उसके पुत्र ने जब गुरु कबीर साहब के चरणों में नमन किया तब काल कँपने लगा। धर्मदास भी तो पुरुष का अंश है।

सतगुरु कहै धर्मनि सुन लेहू। अब भंडार सौंपि तुम देहू।
प्रथम तुमहिं जो सोंपा भाई। सबहिं सबहि तुम देहु लखाई।।

तब चूड़ामणि होवें पूरा। देखत काल होय चक चूरा।।
X X X X X
दोउ आय पुनि गुरु पद परसे। कांपन लग्यो काल तब डरसे।।[45]

पुनः वंश माहात्म्य को बताते हुए कबीर साहब कहते है कि जिन लोगों ने परमात्मा के भेजे हुए वंश से नाम–दान लिया है तो उस नाम (उपदेश) चेतना का इतना प्रभाव होता है कि ऐसे जीव निर्भय होकर सतपुरुष के दरबार में जाते हैं। वंश का महत्त्व इसलिये है क्योंकि **वह वंश मात्र वंश न होकर चेतना का वंश या भण्डार है** जिससे निःसृत चेतना अथवा चेतन पुरुष जगत् कल्याणार्थ आते हैं।

वंश हाथ परवाना पइ हैं। सो जिव निरभय लोक सिधै है।
ता कहैं यम नहिं रोके वाटा। कोट अठासी ढूँढे घाटा।।
कोट ज्ञान भाखे मुख बाता। नाम कबीर जपे दिन राता।
बहुतक ज्ञान कथे असरारा। वंश बिना सब झूठ पसारा।।[46]

अस्तु ! काल के द्वादश पंथ जहाँ जगत् में भ्रम फैलाने लगे वहीं बयालीस वंश भ्रम निवारण कर, नामदान द्वारा जीव को चैतन्य करने के लिए उत्पन्न हुए।

(घ) नादवंश या नादचेतना एवं बिन्द पुत्र

भक्ति के सगुण एवं निर्गुण दो रूप हैं। दोनों नाद चेनता के लिए हैं। किसी भी पंथ का उद्देश्य नाद चेतना ही है –

कहँ निरगुण कहँ सरगुन भाई। नाद बिना नहिं चल पंथाई।।[47]

केवल वर्णनात्मक ज्ञान लाभकारी नहीं होता। ज्ञान चौदह करोड़ प्रकार का है किन्तु इन सबसे नाम चेतना या शब्द चेतना सर्वोत्तम है। जिस प्रकार नौ लाख तारे सूर्योदय पर अदृश्य हो जाते हैं उसी प्रकार नाद या शब्द चेतना के समक्ष वाचक ज्ञान अस्तित्व हीन हो जाता है। गुरु के बिना शब्द ज्ञान असम्भव है। जैसे मल्लाह जहाज को चलाता है उसी प्रकार गुरु शब्द के जहाज पर चढ़ाकर भवसागर से पार लँघाते हैं।

जो ज्ञानी करी है बकवादा। तासों बूझहु व्यंजन स्वादा।
कोट यतनसों बिंजन करई। साम्हर बिन फीका सब रहई।।
जिमि बिंजन तिमि ज्ञान बखाना। वंस छाप सतरस सम जाना।।

चौदह कोटि है ज्ञान हमारा। इनते सार शब्द है न्यारा।

X X X X X

नौ लख तारा कोटि गियाना। सार शब्द देखहु जस माना।।
उदधि मांझ जस चलैं जहाजा। ताकर और सुनो सब साजा।।
जस वोहित तस शब्द हमारा। जस यरिया तस वंश तुम्हारा।।[48]

अतः काग–चाल को छोड़ हंस गति को धारण करना चाहिये तथा शब्द चेतना के आगे काल भी प्रभावी नहीं हो सकता।

वंश छाप न पाव जौ शिव, शब्द निशदिन गावई।
कालफन्द में फँद तेहिं, मोहि दोष न लावई।।

सोरठा

सजे काग की चाल, पारखि शब्द सो हंस हो।
ताहि न पावै काल, सार शब्द जो दृढ़ गहे।।[49]

पुनः कबीर साहब अपने शिष्य धर्मदास से कहते हैं कि नादी और बिन्दी पुत्रों के वंश उन्हीं धर्मदास से चलेंगे। नादी पुत्र दयाल चेतना में लय करायेगा तथा बिन्दी पुत्र नारायण काल के दायरे में ले जायेगा। यहाँ नादी तथा बिन्दी शब्दों का स्पष्टीकरण आवश्यक है। नाद का अर्थ है ध्वनि या शब्द। वे पंथ प्रवर्त्तक जो नामदान देकर लोगों को शब्द की चाल चलाकर परम चेतना में भक्त की चेतना का लय करायेंगे वे नादी पुत्र कहलायेंगे तथा वह लोगों के भ्रम को तोड़कर उन्हें अनामी देश में ले जायेंगे।

जब–जब काल ने जीवों को प्रताड़ित किया, तब–तब परम शक्ति अवतरित हुई है। भ्रमित हुए सांसारिक जीवों को भक्ति मार्ग 'नाद हंस' या नाद पुत्रों ने ही दिखाया है। धर्मदास कबीर साहब के नादपुत्र हैं। उन्होंने कबीर साहब के नादवंश (शब्द स्वरूप) चलाने के लिए जन्म लिया है। धर्मदास के बाद चूरामणि (मुक्तायन) ने इस पंथ को चलाया।

नाद हंस तबहिं प्रगटायन, भरमतो हि जग भक्ति दिढायब।
नाद पुत्र सो अंश हमारा, तिनते होय पंथ उजियारा।।[50]

चारों युगों में नाम के द्वारा ही परमात्मा से मिलने की बात की गई है। संसार में वही पन्थ उन्नत हुआ है जिसने शब्द–श्रवण की बात कही है।

चारहु युग देखहु समवादा। पन्थ उजागर कीन्हो नादा।[51]

वह पन्थ चाहे निर्गुण की बात कहे या सगुण की; दोनों ही नाद या शब्द को कहते हैं। धर्मदास कबीर साहब के नादी पुत्र है।

धर्मनि नाद पुत्र तुम मोरा। ताते दीन्ह मुक्ति का डोरा।[52]

बिन्द पुत्र

धर्मदास का पुत्र दास नारायन काल (मृतंघ दूत) का अंश है।

भवसागर उतरे जीव बंसा। दास नारायन काल के अंशा।

काल ने लोगों को बहकाने के लिए चौदह यम और यमों के भक्त संसार में भेजे है जो जीवों को काल जाल में फँसाकर नरक में ले जाते हैं। कबीर साहब

धर्मदास से कहते हैं कि आगे जो छठी पीढ़ी होगी, वे तुम्हारे बिन्दी पुत्र होंगे। वे तुम्हारे बचनों को भूलकर ज्ञान का दान बिन्दी पुत्रों को देंगे।

छेंठे पीढ़ी बिन्दु तुव होई। भूलै वंश बिन्दु तुव सोई।।
टकसारी को ले हैं पाना। अस तुव बिन्द होय अज्ञाना।।
चाल हमार बस तुव झाडै। टकसारी कै मत सब माँडै।
चौका तैसे करै बनाई। बहुत जीव चौरासी जायी।
आपा हंस अधिक होय ताही। नाद पुत्र से झगर कराही।[53]

वे आधार तो शब्द का करेंगे किन्तु बातें विरूद्ध करेंगे। वे नाद पुत्र की भाँति धर्म का प्रचार–प्रसार करेंगे और सार शब्द का भेद बतायेंगे किन्तु यथार्थ या सार शब्द को छोड़ देंगे। वे आरती का सामान मँगवायेंगे, चौका बनायेंगे और नामदान करेंगे किन्तु सभी जीवों को चौरासी के चक्कर में उलझा देंगे।

जहाँ–जहाँ नाद पुत्र शब्द की चाल या नाद चेतना की ओर लोगों को लगायेंगे। बिन्द पुत्र उनसे झगड़ा करेंगे, उनको बेइज्जत करेंगे। वह बहुत से लोगों को विपरीत रास्ते पर ले जायेंगे और उन्हें धोखा देंगे। जो जीव काल के खेल में प्रसन्न रहेंगे वे काल के मुँह में जायेंगे। इस प्रकार बिन्दी पुत्र दास नारायन का नरक में वास होगा क्योंकि जो स्वयं परमात्मा के रास्ते पर नहीं चला वह लोगों को नाद चेतना से कैसे झंकृत कर सकता है अतः कबीर साहब धर्मदास से बिन्दी पुत्र के मोह से निकलने को कहते हैं क्योंकि जिन जीवों ने परमात्मा के भेजे हुए वंश या बचन वंश को पहचान लिया है वे ही सच्चे शब्द या नाद चेतना में आनन्दित हो सकते है।

वचन बंस को जीव जाना। सत शब्द चीन्हे सहिदाना।।

(ड.) आरती का भाव, नामदान एवं नाम–प्रताप

थाल में जलता हुआ दीपक रखकर इष्ट देव के सन्मुख घुमाने की क्रिया को आरती या आरत कहते हैं। सतसंग में सतगुरु से दृष्टि जोड़कर ध्यान करने के साधन को और चित्त को सब तरफ से हटाकर सतगुरु के चरणों में लगाने को आरती कहते हैं। आरती के समय पढ़े जाने वाले शब्द को भी आरती हैं।[54]

कबीर साहब का आरती का उद्देश्य था काल–कष्टों से निवृत्ति –

आनहु साज आरती केरा। काल कष्ट मेटों जिय केरा।।

कबीर साहब नामदान के समय आरती कराते थे। खेमसरी वृतान्त तथा धर्मदासादि प्रसंगों में आरती की विधि का वर्णन प्राप्त होता है। आरती के समय

उन्होंने भक्त खेमसरी से कुछ सामग्री मँगवाई जैसे – मिष्ठान, पान, कपूर, केसर, आठ प्रकार की मेवा, पाँच सफेद वस्त्र और चादर, कदली (केले)के पत्र, नारियल, श्वेत कमल तथा श्वेत चन्दन गोघृत आदि। उन्होंने ये सभी वस्तुएं मँगवाकर चौके में रखने को कहा। उपर्युक्त सामान के साथ उन्होंने पूंगी (सुपारी) फल भी मँगवाया और चौका साफ कर (लीप कर) वहाँ रखने को कहा –

भाव आरती खेमसरि सुनु, तोहि कहुँ समुझायके।।
मिष्ठान्न पान कर्पूर केरा, अष्ट मेवा लायके।।
पांच बसन श्वेत वस्तर, कदलिपत्र अच्छन्दना।।
नारियल अरु पहुप श्वेतहि, श्वेत चौका चंदना।।
यह आरति अनुमानि, आनुखेमसरि साज सब।।
पुंगीफल परमान, शब्द अंग चौका करे।।
और वस्तु आनहु सुठिपावन। गोघृत उत्तम श्वेत सुहावन।।[55]

खेमसरी ने सफेद चादर का चंदोवा तान दिया। कबीर साहब ने विधिपूर्वक आरती की। कबीर साहब चौके पर सिंहासन करके बैठ गये और तब वहाँ शब्द धुन गूँजने लगी किन्तु सामान्यजन उस धुन को नहीं सुन सकता था।

हम चौका पर बैठक लयऊ। भजन अखंड शब्द धुन भयऊ।।
भजन अखंड शब्द ध्वनि होई। दुनियां चांप सके नहिं कोई।।[56]

चौके में शब्द हो रहा था साथ ही जैसे ही नारियल तोड़ा, काल भागने लगा। नारियल को जैसे ही पत्थर से तोड़ा, काल के शीश पर प्रहार होने लगा।

शब्द अंग चौका अनुमाना, मोरत नारियल काल पराना।
जब भयो नरियर शिला संयोगा। काल शीश पुनि चम्पै रोगा।।[57]

कबीर साहब ने नारियल तोड़कर उसकी आत्मा का संसार से नाता तोड़कर सत्पुरुष से मेल करा दिया।

पाँच शब्दों का उच्चारण कर कदली दल फेरा तथा तीन बार सत्पुरुष का नाम लिया। एक क्षण के लिए पुरुष वहाँ विराजमान हुए। सभी लोगों ने उठकर आरती की। इसके बाद आरती की प्रक्रिया समाप्त कर दी तथा आरती का सारा सामान एकत्र कर लिया गया। तिनका तुड़वाकर जल अंचवाया अर्थात् संसार की ओर से उनका ख्याल तोड़ दिया। काल से उनका तिनका (नाता) तोड़ दिया तथा जल का

आंचमन कराया। प्रथम खेमसरी ने नामदान लिया उसके बाद बाकी सभी जीवों ने नामदान लिया। कबीर साहब ने उन्हें ध्यान के विषय में बताकर ध्यान (शब्द) से उन हंसों या जीवों को बचा लिया। उनकी रहनी–गहनी के बारे में समझाकर, नाम के सुमिरन द्वारा मुक्ति का मार्ग बताया।

नरियल मोरत बास उड़ायी। सत्य पुरुष कह जानि जनायी।
पाँच शब्द कहि तब दल फेरा। पुरुष नाम लीन्हो तिहि बेरा।।
छन एक बैठे पुरुष तहँ भाई। सकल सभा उठि आरति लाई।।
तब पुनि आरति दीन्ह मँडाई। तिनका तोरे जल अचवाई।।
प्रथम खेमसरि लीन्हो पाना। पाछे और जीव संमाना।।
दीन्हेउ ध्यान अग समुझाई। ध्यान नाम ते हंस बचाई।।
रहनि गहनि सब दीन्ह दृढ़ाई। सुमिरत नाम हंस घर जाई।।[58]

उस समय कबीर साहब ने बारह जीवों को नामदान किया और उनको परमात्मा से मिलाया। परमात्मा से केवल वही जीव मिल सके जिन्होंने गुरु के चरणों में माथा टेका–

हंसा द्वादस बोध सत्युग, गयउ सुख सागर करी।
सतपुरुष चरण सरोज परसेउ, विहसि के अंकम भरी।

खेमसरी की ही भाँति कबीर साहब ने विचित्र को भी आरती का समान बताया और आरती के साथ नामदानपूर्वक शब्द श्रवण कराया –

चहुँ दिश फिरि अयेऊँ गढ़लंका। भाट विचित्र मिल्यो निःशंका।
x x x x x x x x
कह्यो ताहि आरति को लेखा। खेमसरिहि जस भाषेउ रेखा।।
आनेहु भाव सहित सब साजा। आरति कीन्ह शब्द धुनि गाजा।।
तृण तोरा वीरा तिहि दीन्हा। ताके गृह में काहु न चीन्हा।।
सुमिरण ध्यान ताहिसों भाखा। पूरण डोर गोय नहिं राखा।।[59]

विचित्र की पत्नी ने रावण की पत्नी मन्दोदरी से आरती एवं नाम–दान के विषय में कहा। मन्दोदरी के बार–बार प्रार्थना किये जाने पर कबीर साहब ने नाम–दान किया और उसकी डोर परमात्मा से जोड़ दी –

दीन्हों ताहि पान परवाना। पुरुष डोर सौंप्यों सहिदाना।।
गद् गद् भई पाय घर डोरी। मिलिरंकहि जिमि द्रव्य करोरी।।

रानी टेकेउ चरण हमारा। ता पाछे महलन पगु धारा।।[60]

रानी इन्द्रमती के प्रसंग में भी कबीर साहब खेमसरी की भाँति, रानी के द्वारा आरती के लिये प्रार्थना किये जाने पर आरती का सामान मँगवाते हैं –

करेहु आरती लेहु परवाना। भागे यम तब दूर पयाना।।
चीन्हों मोहि करो परवाती। लेहु पान चालुभौ जल जाती।।[61]

कबीर साहब खेमसरी की भाँति आरती का सामान, चौका करके वहाँ रखने को कहते हैं। रानी सारा सामान सजा कर चौके पर बैठ जाती हैं। इसके बाद आरती होती है। कबीर साहब इन्द्रमती को नामदान करते हैं। नामदान ग्रहण करने के बाद रानी कबीर साहब की चरण वन्दना करती है। रानी अपने पति को भी नाम–दान ग्रहण करने के लिये प्रेरित करती है।

आनेउ सकल साज तब रानी। चौका बैठ शब्द ध्वनि ठानी।
उठि रानी तब माथ नवायी। ले आज्ञा परवानी पायी।।
आरति कर दीन्हा परवाना। पुरुष ध्यान सुमिरण सहिदाना।।

खेमसरी, इन्द्रमती आदि वृतान्तों के अतिरिक्त आरती का उल्लेख धर्मदास प्रसंग में भी प्राप्त होता है। धर्मदास प्रसंग में कबीर साहब धर्मदास से आरती के भाव को बताते हुए कहत हैं कि आरती करने से यमदूत भाग जाते हैं –

धर्मदास सुण आरती साजा, जाते भागि चले यमराजा।[62]

कबीर साहब धर्मदास से सात हाथ लम्बा श्वेत वस्त्र का चंदोवा बनाने के लिए मँगाते है। इसके अतिरिक्त आरती स्थल पर चन्दन का लेप करके चौका बनाने तथा उस पर आटा पूरने, सवा सेर चावल रखने तथा श्वेत सिहांसन तथा अनेक विध सुगन्ध लगाने को कहते है। श्वेत मिष्ठान्न, श्वेत पान या दूध, श्वेत पुंगीफल (सुपारी), लौंग, इलायची, कपूर, आठ प्रकार की मेवा और पान भी मँगवाते है। गणनानुसार जितने जीवों को नाम प्राप्त करना है, उतने नारियल भी मँगाये जाते हैं –

धर्मदास सुनु आरति साजा। जाते भागि चले यमराजा।
सात हाथ को बस्तर लाओ। श्वेत चँदोवा छत्र तनाओ।।
घर आँगन सब शुद्ध कराओ। चौका करि चन्दन छिड़काओ।।
ता पर आँटा चौक पुराओ। सवासेर तन्दुल लै आओ।।
श्वेत सिंहासन तहाँ बिछाई। नाना सुगन्ध घरु तहाँ लगाई।।

श्वेत मिठाई स्वेतै पाना। पुंगीफल श्वेतहि परमाना।।
लौंग इलायची कपुर संवारो। मेवा अष्ट केरा पनवारो।।
जिव पीछे नारियल लै आओ। यह सब साज सुआमि धराओ।।
जो कुछ साहब आज्ञा दीन्हा। धर्मदास सब कुछ धर दीन्हा।।[63]

धर्मदास ने जगह पौंछ कर सारा सामान सजा दिया। वहाँ जाकर कबीर साहब विराजे। कबीर साहब के कहने पर धर्मदास ने छोटे–बड़े सभी सदस्यों को बुला लिया जिससे यह सामग्री पुनः न मँगानी पड़े। नारी–पुरुष सभी ने एक साथ नारियल हाथ में ले लिया और गुरु के सन्मुख भेंट करते हुए शीश नवाया।

जहाँ चौका किया वहाँ ताल, मृदंग, झाँझरी और बाजे का शब्द होने लगा और उसका काल के देश, माया और इन्द्रियों से तिनका (नाता) तुड़वा दिया। तब कबीर साहब ने धर्मदास को नामदान किया। धर्मदास ने सात बार दण्डवत प्रणाम किया। कबीर साहब ने उनके मस्तक पर हाथ रखा और नामदान कर कृतार्थ किया।

चौका कीन शब्द धुनि गाजा। ताल मिरदंग झाँझरी बाजा।
धर्मदास को तिनका तोरा। जाते काल न पकरे छोरा।।

x x x x

धर्मदास परवाना लीन्हा। सात दण्डवत तबही कीन्हा।।
सतगुरु हाथ माथ तिहि दीन्हा। दै उपदेश किरतारथ कीन्हा।।[64]

इस प्रकार इस आरती के कार्यक्रम में जितनी धार्मिक क्रियाएं थीं उनका उद्देश्य था संसार से नाता तुड़वाकर धर्मदास की चेतना जाग्रति।

चूडामणि वंश प्रसंग में भी इस प्रकार की आरती का कथन है।

साहिब चौका जुगमत मंडावा। जो चाहिये सो तुरत मँगावहु।
बहुत भांति सों चौक पुरायी। चूरामणि को लै बैठाई।।[65]

खेमसरी और धर्मदासादि प्रसंगों में भौतिक आरती प्रक्रिया के साथ नामदान देने के पश्चात् कबीर साहब अन्तः आरती की बात करते हैं जिससे दिव्य चेतना जाग्रत हो सके। विशेष अवसरों पर आरती के माहात्म्य का बखान करते हुए वे कहते हैं कि गृहस्थ भक्त को अमावस्या को आरती अवश्य करनी चाहिये अन्यथा उसके घर में काल वास करेगा। यहाँ आरती का स्पष्टीकरण आवश्यक है। आरती का अभिप्राय है – गुरु के नेत्रों का दर्शन अथवा गुरु के सन्मुख हो दर्शन करना।

आगे कबीर साहब कहते हैं यदि पन्द्रह दिनों में दर्शन न हो तो पूर्णिमा वाली रात को इतना ध्यान करे कि प्रयोजन सिद्ध हो जाय। यहाँ आरती का अभिप्राय गुरु स्वरूप के अन्तर में दर्शन से है। यदि पूर्णिमा के दिन भक्त परमशक्ति के स्वरूप का पान कर लेगा तो उसके अन्दर गुरु की शिक्षा या नामदान के प्रभाव वश सुखों का निवास हो जायेगा। यदि उसने अपने अन्तःकरण में (दशम् द्वार में) पूर्णिमा की रात वाला चन्द्रमा देख लिया है और चन्द्रमा की षोडश कलाओं का प्रकाश जीवात्मा ने अनुभव कर लिया है तो उसका नामदान साकार एवं सफल होगा।

गेही भक्त आरती आने। प्रति अमावस आरती ठाने।।
अमावस आरती नहिं होई। ताहि भवन रहे काल सुमोई।।
पाख दिवस नहिं होवे साजू। प्रति पूनो कर आरती काजू।।
पूनो पान लेई धर्मदासा। पावे शिष्य होय सुख वासा।।
चन्द्रकला षोडश पुर आवे। ताहि समय परवाना पावे।।
यथा शक्ति सेवा सहिदाना। हंसा पहुँचे लोक ठिकाना।।[66]

यदि उपर्युक्त अमावस–पूर्णिमा रूप एक माह में दर्शन नहीं हो तो भक्त को अपने गुरु के पास कम से कम छः महीनों के अन्दर दर्शन (आरती या दीदार) करना चाहिये। यदि छः माह में भी उसके अन्तःकरण में गुरु का दर्शन न हो तो वर्ष भर बाद जाकर गुरु के सन्मुख होकर दर्शन करने चाहिये और सेवा करनी चाहिये। एक वर्ष बाद भी जो आरती या नेत्रों के दर्शन नहीं करता तो वह पुरुष परमात्मा पर विश्वास करने वाला नहीं कहा जा सकता। वर्ष भर गुरु का सुमिरन ध्यान करने वाले के समीप काल नहीं आ सकता अथवा काल उसे छल नहीं सकता।

धर्मनि सुनो रंक परभाऊ। छठे मास आरत लौ आऊ।
छठे मास नहिं आरति भेवा। वर्ष माहिं गुरु चौका सेवा।।
सम्वत मांहि चूक जो जायी। तबै संत साकत ठहराई।।
सम्वत मांहि आरती करई। ताकर जीव धोख ना परई।।[67]

वस्तुतः परमसन्तों के दीदार अथवा नेत्रों से नेत्र मिलाकर आरती करने से उनके दिव्य एवं परमचैतन्य तेज से कर्मों का नाश होता है फिर काल कराल को अवकाश कहाँ। इस प्रकार संत कबीर साहब ने नाम–दान के पूर्व भौतिक और अन्तः आरती, इन दो प्रकार की आरती, विधियों का कथन किया है।

नाम प्रताप एवं नाम भेद

कबीर साहब का नाम से अभिप्राय 'सतनाम' से है। सत्यनाम या सतनाम की इतनी महिमा है कि जो जीव सतनाम का जाप करता है, काल उसके निकट नहीं आ सकता –

सत्यनाम परताप, काल न रोके जीव कहँ।।
देखिवंश को जाप, काल रहै सिरनायके।।[68]

इस सत्यनाम के सुमिरन एवं प्रताप से जीव निजघर अर्थात सतलोक तक चला जाता है।

पुरुष नाम सुमिरण सह दाना। वीरा सार कहो परवाना।।
देह धरी सत शब्द समाई। तब हंसा सतलोकै जाई।।[69]

सतनाम अमृत है, अमोल तथा अविचल है। कबीर साहब कहते हैं कि काग बुद्धि को छोड़ हंस गति धारण कर, गुरु के चरण कमलों में प्रीति करने से इस सतनाम का अनुभव किया जा सकता है।

सतनाम अमी अमोल अविचल, अंकवीरा पावई।।
तजि काग चाल मराल मति गहिं, गुरु चरण लौ लावई।।[70]

सतनाम–दान का अधिकार सत्तपुरुष ने संत कबीर साहब को दिया है –

दीन्हों पान–परवाना हाथा। संघ छाप मोहे सोंपयो नाथा।।

नरदेही की महत्ता को ध्यान में रखकर जीव को सतनाम का सुमिरन करना चाहिये। मूढ़ जीव इसके महत्त्व को नहीं जानते और चौरासी में पड़े रहते हैं। जीव को चैतन्य करते हुए कबीर साहब धर्मदास से कहते हैं –

चित चेतो धर्मदास, यमराजा अब छल करे।।
गहे नाम विश्वास, ताकहुँ यम न पावई हिं।।[71]

यह नाम **वर्णनात्मक** एवं **धुन्यात्मक** रूप में दो प्रकार का होता है। वर्णनात्मक नाम वह है जो लिखा जा सकता है, पढ़ा जा सकता है। वर्णनात्मक नाम **'अक्षर'** कहा जाता है तथा असली धुन्यात्मक नाम **निःअक्षर** कहा जाता है। निःअक्षर के द्वारा ही हम परमात्मा को प्राप्त कर सकते है। नामदान वर्णनात्मक शब्दों द्वारा ही किया जाता है। वही वर्णनात्मक नाम सुमिरन के द्वारा धुन्यात्मक बन जाता है। असली धुन्यात्मक नाम (निःअक्षर) नाम रूप, रंग रहित होता है।

निह अक्षर है सार, अक्षर ते लखि पावई।

धर्मनि करो विचार, निह अक्षर निह तत्त्व है।।[72]

कबीर साहब नाम प्राप्त करने वाले अधिकारी के लिये कहते हैं कि जो जीव इस महत्त्वपूर्ण नाम को सतगुरु से प्राप्त कर लेता है, वह इस नाम की डोर को पकड़कर ही परलोक जा सकता है। जो हंस जीव उस निःतत्त्व चेतन भण्डार में समा जाता है, यमराज भी उसको नमन करता है।

सार नाम सतगुरु सो पावे। नाम डोर रहि लोक सिधावे।।

धर्मराय ताको सिर नावे। जो हंसा निः तत्त्व समावे।।[73]

तथा

गहे नाम विश्वास, ताकहुँ यम न पावई हिं।[74]

(च) शब्द–चेतना एवं प्रकाश–चेतना

कबीर साहब ने अनुराग सागर में शब्द–चेतना के गुप्त प्रकट ये दो रूप बताये है।

धर्मदास यह अचरज बानी। गुप्त प्रगट चीन्हे सो ज्ञानी।[75]

जैसा की पूर्व में कहा गया कि परमशक्ति के दो रूप हैं शब्द स्वरूप एवं प्रकाश स्वरूप। शब्द से ही समस्त सृष्टि की रचना हुई हैं। यह शब्द प्रारम्भ में गुप्त या पोटेंशियम फॉर्म में था, उसके कार्यशील या गतिशील (कॉयनैटिक फार्म) होने पर इस सृष्टि की रचना हुई।

परमपूज्य प्रो. सत्संगी साहब ने गुप्त और प्रकट चेतना का विस्तृत वर्णन किया है उनके अनुसार चैतन्य शक्ति की गुप्त और प्रकट ये दो अवस्थाऐं हैं। सृष्टि के पूर्व जब परम पुरुष शून्य समाधि में लीन थे, आत्मरत थे, अपने में लीन थे, विज्ञान के हिसाब से यह चैतन्य शक्ति उस वक्त पूर्णतः गोपनीय थी स्थितज अवस्था में थी पोटेन्शियल फार्म (Potential Form) में एनर्जी (Energy) थी, जो कार्यशील नहीं हुई थी, गतिशील नहीं हुई थी। धर्म के हिसाब से जब चैतन्य पुरुष समाधि से उठे, उनमें ये हिलोर उठी, मौज उठी, भारी मौज उठी, मानिये एक ज्वार की तरह, महान् ज्वार की तरह सागर में, महासागर में, महा महासागर में (प्रेम प्रचारक 3 मार्च 2008, पृ. 2)।

इस प्रकार यह चेतन शक्ति गुप्त से प्रकट दशा में परिणत हुई (प्रेम प्रचारक 22 दि. 1986 के अनुसार) गुप्त और प्रकट में चेतन शक्ति के रूप द्वय हैं।

सर साहब जी महाराज के अनुसार चेतन शक्ति के दो रूप हैं – गुप्त और प्रकट अथवा स्थितज और गतिज[76]।

समस्त सृष्टि की रचना शब्द से ही हुई है। पूर्व में कहा जा चुका है कि "प्रत्येक शक्ति के दो रूप होते हैं गुप्त और प्रकट, जब कोई शक्ति गुप्त रूप में होती है तो मनुष्य को उसका कोई ज्ञान नहीं हो सकता। वह अरूप और अनाम रहती है। जब वह क्रियावती होती है तभी मनुष्य को उसका ज्ञान होता है और जब कोई शक्ति क्रियावती होती है तब उसका विकास धारा रूप में हुआ करता है अर्थात उसकी धाराएं चतुर्दिक फैलकर मंडल बाँधती है और ऐसी प्रत्येक धारा के संग–संग एक शब्द की धारा प्रवाहित होती है इसीलिये कहा जाता है कि जहाँ कोई शक्ति क्रियावती होती है वहाँ शब्द की ध्वनि भी विद्यमान रहती है।[77]

पुरुष के अन्दर सृष्टि की रचना की इच्छा जाग्रत हुई और स्फोट या बिग–बैंग के अनन्तर शब्द प्रकट हुआ अर्थात गुप्त चेतना जो पोटेंशियम फार्म में थी कायनैटिक या गतिशील या कार्यशील हुई और इस प्रकार कार्यशील होने पर शब्द से समस्त सृष्टि की रचना हुई।

दुःख और कष्ट में पड़े हुए जीवों को निकालने के लिए कबीर–साहब ने 'सत' शब्द का उच्चारण किया। सत्य या सतनाम की धुन से ही सारे जीव सत्य या सतनाम की डोर में बँध गये।

तब हम सत शब्द गुहरावा। पुरुष शब्द सिउ जीव जुड़ावा।।[78]

आरती एवं नामदान प्रसंग में विविध घण्टा शंखादि शब्दों के श्रवण का वर्णन किया जा चुका है।

वस्तुतः जन्म–जन्म से जीव सत्य नाम के बिना काल के वशीभूत थे।

काल कराल प्रचण्ड, जीव परे वश ताहिके।।
जनम–जनम भे दण्ड, सत्यनाम चीन्हे बिना।।[79]

धर्मदास ने कबीर साहब से जिज्ञासा प्रकट की थी कि उन्होंने कौन–सा शब्द किस प्रकार पुरुष से ग्रहण किया, उसे छिपाइये नहीं बताइये अथवा किस शब्द से जीव का उद्धार किया, वह भी बताइये।

धर्मदास अस बिनती लायी। ज्ञानी मोहि कहो समझायी।।
जो कछु पुरुष शब्द सुख भाखो। सो साहिब मोहि गोय न राखो।।
कौन शब्द ते जीव उबारा। सो साहिब सब कहो बिचारा।।[80]

कबीर साहब धर्मदास को उत्तर देते हुए कहते हैं कि पुरुष ने मुझे जो आदेश दिया था वही मैं उस रूप में समझाऊँगा। परमशक्ति ने बहुत–सी विधियाँ समझाते हुए मुझसे कहा कि आप जीवों को नाम–दान देकर, शब्द के साथ जोड़कर परमात्मा से मिलने का मार्ग बताइये। पुरुष ने मुझे वह गुप्त वस्तु अर्थात शब्द दिया। वह शब्द विदेह है अर्थात उसका कोई रूप–रंग नहीं है वह तो एक शक्ति है। यह शब्द मुखोच्चरित ध्वनिवत् नहीं है। इस अनहद शब्द का ज्ञान गुरु के बताये हुए मार्ग पर चलने से हो सकता है।

पुरुष मोहि जैसे फुरमायी। सो सब तुमसों संधि लखायी।।
कहेउ मोहि बहु विध समझायी। जीवहि आनो शब्द चितायी।।
गुप्त वस्तु प्रभु मोकहँ दीन्हा। नाम विदेह मुक्ति कर चीन्हा।।
दीन पान परवाना हाथा। संधि छाप मोहि सोंप्यो नाथा।।[81]

यह शब्द धुन बिना रसना (जिह्वा या जुबान) के ऊपर से आ रही है और स्वतः ही हमारे अन्दर आ रही है। जो गुरुमुख शिष्य होते हैं वे इस शब्द की कमाई (शब्दाभ्यास) को करते हैं तथा दिन रात इस मधुर नाम–रस का पान करते है। ऐसा अनुरागी शिष्य कामिनी की भाँति अपने गुरु से प्रेम करता है। वह हरपल गुरु की कान्ति को निहारता है। ऐसे शिष्य की स्थिति चकोर और पपीहा के समान होती है।

बिनु रसना ते सो धुनि होई। गुरु गम ते लखि पावे कोई।[82]
गुरु मुख शब्द सदा उर राखे। निशदिन नाम सुधारस चाखे।।
पिया नेह जिमि कामिन लागे। तिमर गुरु रूप शिष्य अनुरागे।।
पल–पल निरखे गुरु मुख कान्ती। शिष्य चकोर गुरु शशि शांती।।[83]

जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने पति के निमित्त अपने प्राण न्यौछावर कर देती है, किसी दूसरे पुरुष का विचार मन में नहीं आने देती वही स्थिति गुरुमुख शिष्य की होती है। पतिव्रता स्थिति का जिस प्रकार दोनों कुलों में सम्मान होता है, उसी प्रकार शिष्य के दोनों लोक धन्य हो जाते है। अतः शब्द चेतना में गुरु भक्ति ही प्रमुख है।

पतिव्रता ज्यों पतिव्रत ठाने। द्वितीय पुरुष सुपने नहीं जाने।।
पतिव्रता दोउ कुलहिं उजागर। यह गुण गहे सन्तमति आगर।।
x x x x
गुरु ते अधिक कोई नहिं दूजा। भर्म तजै करि सतगुरु पूजा।।[84]

अनुराग सागर ग्रन्थ के आरम्भ में कबीर साहब शब्द महिमा का गुणगान करते हुए कहते हैं कि शब्द पारखी जौहरी ही अनुराग सागर का अधिकारी है।

कोई बूझै जन जौहरी, शब्द की पारख करें।।
चितलाये सुनहिं सिखावनो, हित जाके हिरय धरै।।[85]

कोई विरला जीव ही सन्त प्रदत्त शब्द चेतना पर विचार करता है।

कोई इक सन्त सुजान, जो मम शब्द विचारई
पावै पद निर्बान, बसत जासु अनुराग उर[86]

सारी आशाओं को छोड़ केवल सत्य शब्द से ही अनुराग करना चाहिये। ऐसा करने से जीव काग से हंस गति को प्राप्त करता है।

तजि सकल आसा शब्द बासा, काग हंस कहावई।।[87]

तथा

तजे काग की चाल, सत्य शब्द गहि हंस हो।।
मुकता चुगे रसाल, पुरुष पच्छ गुरु मग गवन।।[88]

अधिकारी शिष्य जब प्रपत्ति या आत्म समर्पण अथवा मृतक भाव धारण कर लेता है और चक्षु, श्रवण, नासिका, शिश्न तथा कामवशीकरण कर लेता है तब उसके हृदय में सतगुरु का शब्द स्वरूप विलास भवन में; दीपक के प्रकाशवत् शोभायमान होता है।

दीपक ज्ञान प्रकाश, भवन उजेरा करि रहो।।
सतगुरु शब्द विलास, भाज चोर अँजोरा जब।।[89]

शब्द ही प्रमुख है। कोई व्यक्ति चारों युगों में काशी रहे, नीमसार, बद्रीनाथ, गया तथा द्वारका में रहकर स्नानादि कर ले तथा अड़सठ तीर्थों की परिक्रमा कर ले किन्तु शब्द या शब्द चेतना के अभाव में भ्रम दूर नहीं हो सकते न ही यमराज का भय मिट सकता है।

जो युग चार रहे कोई कासी। सार शब्द बिन यमपुर वासी।
नीमषार बद्री पर धामा। गया द्वारिका प्राग अस्नाना।।
अड़सठ तीरथ भू परिकरमा। सार शब्द बिन मिटै न भरमा।।
कहँ लग कहौं नाम परभाऊ। जा सुमिरे जमन्नास नसाऊ।।[90]

सम्प्रति कबीर साहब सार शब्द (सत्यनाम) का स्वरूप बताते हुए कहते है कि सार शब्द की कोई देह नहीं, कोई रंग तथा रूप नहीं होता। हम केवल अपने अन्दर

विदेह सार शब्द के दर्शन कर सकते हैं। मानव देह पंच महाभूतों – पृथिवी, अग्नि, जल, वायु तथा आकाश से निर्मित है किन्तु वह शब्द इन तत्त्वों से निर्मित नहीं है।

सार शब्द विदेह स्वरूपा। नि अच्छर वहि रूप अनूपा।।
तत्त्व प्रकृति भाव सब देहा। सार शब्द नितत्त्व विदेहा।।[91]

चारों ओर अनेक शब्द हो रहे है किन्तु जीव का उद्धार 'सार शब्द' सतनाम या सत्यनाम से ही होता है। सतगुरु उस पुरुष का दिया हुआ परवाना लेकर आता है और नाम–सुमिरन द्वारा हमारी उस पुरुष से पहचान करवाता है। सुमिरन के बिना उस सत्ता को नहीं पहचान सकते।

कहन सुनन को शब्द चौधारा। सार शब्द सों जीव उबारा।।
पुरुष सु नाम सार परवाना। सुमिरण पुरुष सार सहिदाना।।[92]

सद्गुरु की दया से ही जीव सत्त शब्द का श्रवण कर सकता है।

धर्मदास यह कठिन कहानी। गुरुगम ते कोई विरले जानी।।[93]

तथा

देहुँ सत्य शब्द दिढ़ाय हंसहि, दया शील क्षमाधनी।।

सतगुरु की कृपा से जीव सतनाम का सुमिरन कर काल के सिर पर पैर रखकर सतलोक तक पहुँच जाता है।

पुरुष सुमिरन सार वीरा, नाम अविचल गाइहौं।।
शीश तुम्हरे पाँव देके, हंसहि लोक पठाइहौं।।[94]
सत्य शब्द दे साथ जिहि परबाना देइ हैं।।
सदा ताहि हम साथ, सो जिव यम नहिं पाई है।।[95]

जो जीव मन–वचन–कर्म से दृढ़ता से सुमिरन तथा शब्द का अभ्यास करता है वह भवसागर से पार हो जाता है।

पुरुष शब्द है सार, सुमिरन अमी अमोल गुण।।
सो हंस हो भव पार, मन वचन कर्म जो दृढ़ गहे।।[96]

कोई विरला जीव ही सत्य शब्द के अभ्यास से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है अर्थात परमानन्द में लय कर पाता है।

कोई इक विरला जीव, परखि शब्द मांहि चीन्हई।।
धाय मिले निज पीव, तजे जार को आसरो।।[97]

सुमिरन के समय जिह्वा से नाम का सुमिरन करते हैं शनैः शनै स्थिति यह होती है कि जिह्वा चुप हो जाती है और इस जिह्वा के बिना ही सुमिरन होता रहता है। जीव की ऐसी अवस्था होने पर काल भी उससे परास्त हो जाता है। यह सूक्ष्म मार्ग ध्यान का सहज मार्ग है।

सार शब्द विदेह स्वरूपा। निह अक्षर वहि रूप अनूपा।।
तत्त्व प्रकृति भाव सब देहा। सार शब्द नितत्त्व विदेहा।।
कहन सुनन को शब्द चौधारा। सार शब्द सौं जीव उबारा।।
पुरुष सुनाम सार परवाना। सुमिरण पुरुष सार सहिदाना।।
बिन रसना के जाय समाई। तासों काल रहे मुरझाई।।
सूक्ष्छम सहज पन्थ है पूरा। तापर चढ़ो रहे जन सूरा।।

अविचल धाम की प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि मन को गुरु वचनानुसार गुरु के चरण कमलों अथवा ध्यान में लगाकर गुरु–लीला को निरखते रहना चाहिये। विदेह अर्थात रूप, रंग, रेखा रहित नाम (शब्द) दान से गुरु शिष्य को मुक्ति के मार्ग की ओर ले जाते हैं तथा मुक्ति प्रदान करते हैं।

मन वचन क्रम गुरु ध्यान, गुरु आज्ञा निरखत चले।।
देहि मुक्ति गुरु दान, नाम विदेह लखायकै।।[98]

ध्यान की महत्ता बताते हुए संत कबीर साहब कहते हैं जीव को जब तक विदेह अर्थात् निर्गुण अथवा रूप, रंग, रेखा रहित परम शक्ति का ध्यान नहीं होता, तब तक जीव भटकता रहता है। ध्यान की एक शुद्ध अवस्था का कथन करते हुए कबीर साहब कहते है कि **एक क्षण के लिए भी हमारा ध्यान या हमारी चेतना उस विदेह रूप में लय कर जाती है, तो उस सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता। यही स्थिति ध्यान की उत्कृष्ट अवस्था है जिसमें जीव चेतना निज चेतन भण्डार में लय कर जावे।**

जब लग ध्यान विदेह न आवे। तब लग जिव भव भटका खावे।।
ध्यान विदेह औ नाम विदेहा। दोई खल पावे मिटे संदेहा।।
छन इक ध्यान विदेह समाई। ताकी महिमा वरणि न जाई।।[99]

भौतिक रूप से जिह्वा द्वारा नामोच्चारण तो सभी करते हैं किन्तु निर्गुण ध्यानावस्था विरलों की ही होती है।

काया नाम सबै गोहरावे। नाम विदेह विरले काई पावे।।

सन्त कबीर साहब ने शरीर में चक्र, कमल एवं बहत्तर नाड़ियों का कथन किया है तथा उन स्थलों के अधिष्ठाता देवताओं का भी कथन किया है जैसे प्रथम मूल कमल जिसमें चार पंखुड़ियाँ है और जहाँ गणेश का वास है। मूल कमल के ऊपर छः पंखुड़ियों का कमल है जहाँ ब्रह्मा और सावित्री का वास है। अष्ट दल नाभि कमल में विष्णु और लक्ष्मी का वास है आदि। सुरत का वास सतगुरु के वास अर्थात् छठे चक्र पर है या दोनों भृकुटियों के मध्य है जहाँ उस अजपा का प्रकाश स्वरूप भासित होता है।

सुरति कमल सतगुरु के वासा। तहँ एतिक अजपा परकाशा।।[100]

यह सार शब्द सतनाम का जाप करते समय जिह्वा शान्त हो जाती है और अन्तर से शब्द जाप आरम्भ हो जाता है, उस समय काल प्रभावहीन हो जाता है। यह सारशब्द सतनाम जाप का सूक्ष्म एवं सहज मार्ग है। शूरवीर साधक ही निरन्तर इस अभ्यास में लगे रहते हैं। सतलोक में अनन्त पंखुड़ियों वाला पद्म या पुहुप है। अजपाजाप की डोर से उसका स्पर्श या ज्ञान हो सकता है। उसके सूक्ष्म द्वार का स्पर्श अगम–अगोचर सत्पथ का स्पर्श है। अन्तःकरण जब विषय–वासनाओं से शून्य हो जाता है, तब वह इस आदिपुरुष सतपुरुष के वास स्थल सतलोक के प्रकाश से प्रकाशित होता है। अभ्यास द्वारा हंस जीव वहाँ पहुँचते हैं। सुरत जो आदि पुरुष का अंश है, अपने गन्तव्य तक पहुँच जाती है।

पदम अनन्त पुँखुरी जाने। अजपा जाप डोर सो ताने।।
सुच्छम द्वार तहां तब परसे। अगम अगोचर सत्पथ परसे।।
अन्तर शून्य महि होय प्रकाशा। तहँवाँ आदि पुरुष को बासा।
ताहिं चीन्ह हंस तहँ जाई। आदि सुरत तहँ लै पहुँचाई।।
आदि सुरत पुरुष को आदी। जीव सोहँगम बोलिये ताही।।
धर्मदास तुम सन्त सुजाना। परखो सार शब्द निरवाना।।[101]

सार शब्द (नाम) जपने की विधि का गुरुगम भेद निम्न छन्द में है –

अजपा जाप हो सहज धुना, परखि गुरु गम डारिये।।
मन पवनथिरकर शब्द निरखै, कर्ममनमथ मारिये।।
होत धुन रसना विना, कर माल विन निखारिये।।
शब्द सार विदेह निरखत, अमर लोक सिधारिये।।

शोभा अगम अपार, कोटि भानु शशि रोम इक।।
षोडश रवि छिटकार, एक हंस उजियार तनु।।[102]

अजपा अर्थात बिना जपे स्वतः होने वाला जाप आरम्भ हो जाता है। सहज रूप में धुन सुनाई देती है। इस तरह परखकर गुरु द्वारा निर्दिष्ट मार्ग या लक्ष्य पर चलना चाहिये। **मन और वायुओं को स्थिर करके शब्द श्रवण करना चाहिये।** इस प्रकार कर्म और मन मथ जायेंगे। बिना रसना के वह धुन सुननी चाहिये। हाथ में माला जाप के बिना ही इस धुन की परख हो सकती है। स्वतः होती हुई इस धुन को सुनते हुए जीव उस विदेह सार शबद को पकड़कर अमरलोक, अनामी देश में पहुँच जाता है।

कबीर साहब धर्मदास से कहते हैं कि उस अनामी देश में पहुँचकर जीव अगम–अपार सतपुरुष के दर्शन करता है। जिनके एक–एक रोम का प्रकाश करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा के बराबर है। वहाँ जाकर एक हंस जीव का प्रकाश भी सोलह सूर्यों के बराबर हो जाता है।

अनुराग सागर के अन्त में कबीर साहब कहते है – अनुराग सागर में अगम्य को भी गम्य या गमनीय बना दिया है। सत्तपुरुष की लीला तथा काल के छल–बल सभी का वर्णन इस ग्रन्थ में कर दिया गया है। जो विवेकीजन अपनी अनुकूल रहनी–गहनी तथा विवेक से जानेगा, समझेगा वही अगम्य इस सत्तलोक के मार्ग को समझेगा।

सतगुरु अमान, अजर, अमर और अविनाशी हैं उन्होंने 'शब्द' का सप्रमाण कथन कर दिया है। जो जीव इस शब्द को अभ्यास आदि से प्राप्त करने का प्रयास करेगा, वही अमर होगा।

सतगुरु पीय अमान, अजर, अमर विनशै नहीं।।
कह्यो शब्द परमान, गहे अमर सो अमर हो।।[103]

मन रूपी भँवर को सतगुरु के चरण कमलों में लगाने पर ही अचल, अटल एवं अविनाशी धुरधाम मिल सकेगा।

मन अलि कमल बसाव, सतगुरु पद पंकज रूचिर।
गुरु चरण चितलाव, इस्थिर घर तबही मिले।।[104]

सतगुरु की कृपा से ही अभ्यास में सुरत और शब्द का मेल सम्भव है। शब्द के अभ्यास से ही सतपुर की प्राप्ति सम्भव है जहाँ जीवात्मा रूपी बिन्दु पुरुष अथवा

परमात्मा रूप सिन्धु में मिल जाता है ऐसे हंसलोक का क्या वर्णन किया जाय जहाँ जीव सुखपूर्वक उस सुख सागर को प्राप्त कर विलास करता है –

शब्द सुरति का मेल, शब्द मिले संतपुर चले।।
बुन्द सिन्धु का खेल, मिले तो दूजा को कहे।।[105]
मन की दशा विहाय, गुरु मारग निरखत चले।।
हंस लोक कह जाय, सुख सागर सुख सोलहै।।[106]

प्रकाश चेतना

सन्त कबीर साहब ने शब्द चेतना से सृष्टि रचना का विस्तृत वर्णन किया है तथा सतलोक वर्णन में पुरुष के प्रकाश स्वरूप का बखान किया है। सतनाम के सुमिरन से पुरुष का प्रकाश स्वरूप अन्तःकरण में भासित होता है।

सुच्छम द्वार तहाँ तब परसे। अगम अगोचर सत्पथ परसे।।
अन्तर शून्य महिं होय प्रकाशा। तहँवाँ आदि पुरुष को वासा।।[107]

सन्त कबीर साहब का कथन है कि छठे चक्र पर अथवा दोनों भृकुटियों के मध्य अजपा का प्रकाश स्वरूप भासित होता है।

सुरति कमल सतगुरु के वासा। तहँ एतिक अजपा परकाशा।।[108]

आरती एवं नामदान प्रसंग में पुरुष के प्रकाश स्वरूप के दर्शन के विषय में भी बताया गया।

कबीर साहब ने पुरुष के शब्द स्वरूप को ही प्रमुख बताया है। यही शब्द स्वरूप निर्वाण या मुक्ति कारक है। अनुराग सागर का प्रारम्भ और अन्त शब्द वैशिष्ट्य से ही होता है जिसके लिये भक्त का अनुरागी होना आवश्यक है अर्थात अनुरागी भक्त ही गुरु कृपा से शब्द श्रवण कर निर्वाण प्राप्त कर सकता है। यही इस ग्रन्थ का उद्देश्य है।

कोई बूझे जन जौहरी, जो शब्द की पारख करै।।
शब्द सुरति का मेल, शब्द मिले संतपुर चले।।

(छ) सत्य या सत्तलोक एवं चेतना–लय

तीन लोकों से परे अर्थात काल की हद या सीमा से परे जो चौथा लोक या सतलोक या सतपुर या सचखण्ड है; वह आनन्द और सुखों का धाम है। वहाँ के हंस

सतपुरुष का दर्शन पाकर प्रसन्न होते हैं और यह दर्शन रूपी अमृत ही उनका आहार है।

सतगुरु आनँद धाम, शोक मोह दुःख तहँ नहीं।।
हंसन को बिश्राम, पुरुष दरस अँचवन सुधा।।[109]

सन्त कबीर साहब ने अनुराग सागर में तीन लोकों से ऊपर चौथे लोक सतलोक का भव्य, दिव्य एवं विस्मयकारी वर्णन किया है। वेदादि में तीन लोकों तक का ही कथन है। ऋग्वेद में वर्णित है कि परमेश्वर ने आकाश के बीच त्रिपाद परिमित स्थान में त्रिलोक का निर्माण करके उनके भीतर धर्मों (जगन्निर्वाहक कर्म समूहों) को स्थापित किया।

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन्।[110]

यहाँ त्रिपाद या तीन लोकों तक का कथन किया है। श्रुतियों में नेति–नेति (अर्थात् यहीं समाप्ति नहीं है अर्थात् आगे भी और है) द्वारा आगे के लोक अर्थात चौथे लोक–सतलोक की पूर्व सूचना दी गई है। चौथे लोक सत्तलोक का कथन सर्वप्रथम कबीर साहब ने किया तदनन्तर गुरुनानक देव और सन्त तुलसी साहब आदि ने सतलोक का कथन किया है।

राधास्वामी मत के प्रथम अवतार संत श्री शिवदयाल सिंह जी (स्वामीजी महाराज) के अनुसार सत्तलोक से ही नीचे के लोकों का विस्तार हुआ है।

"..... सतलोक की कला से तीन लोक और सब विस्तार हुआ।[111] सतलोक महाप्रकाशवान और पाक और निर्मल है और महज (सिर्फ) रूहानी यानी चैतन्य ही चैतन्य है और कुल नीचे की रचना का आदि अन्त यही है।[112] सत्त शब्द का जहूर (प्रकाश) इसी स्थान से हुआ और इसको महानाद और सार शब्द भी कहते हैं और सत्तपुरुष और आदि पुरुष भी इसी का नाम है। यह अजर, अमर, अविनाशी और सदा एक रस है। संत इसी पुरुष का रूप यानी औतार हैं।[113] यहाँ काल और कर्म और दण्ड और पुण्य और पाप और दुःख और संताप का नाम और निशान भी नहीं है और सच्चे कामिल फकीरों ने इसे हूत कहा।[114]

सन्त मत में सत्यलोक का भव्य एवं दिव्य वर्णन है। सारबचन नज्म हिदायतनामा (पृ. 418–420 तक) में सत्यलोक, सत्यपुरुष, अलखलोक तथा अगमलोक का अत्यन्त विस्मयकारी चित्रण है –

"..... जब इस मैदान के पहुँची, नाका सत्तलोक का हासिल हुआ कि वहाँ से आवाज सत्त–सत्त और हक–हक बीन–बाजे में से निकलती सुनाई दी कि उसको सुनकर रूह मस्तानावार धसी चली जाती है और वहाँ नहरें सुनहरी और रुपहरी पुर अज़ आबि़जुलाल दीखने लगीं और बाग़ बड़े–बड़े नज़र आये। एक–एक दऱख्त उसका करोड़ करोड़ योजन की बुलन्दी रखता है और सूरज और चाँद करोड़ों बज़ाय फूल और फलों के लगे हुए हैं और अनेक रूहें और हंस उन दरख्तों पर बज़ाय जानवरों के चहचहे और विलास कर रहे हैं। अज़ब लीला उस मुकाम की है कि कहने में नहीं आ सकती। .....

अब सत्य पुरुष के स्वरूप का वर्णन करता हूँ कि एक–एक रोम उसका इस कदर मुनव्वर है कि करोड़ों सूरज और चाँद शरमिन्दा हैं। जब कि एक रोम की ऐसी सिफ़त है तो तमाम रोमों की क्या सिफ़त लिखने में आवे और जिस्म की तारीफ की कहाँ गुंजाइश। नैन, नासिका और श्रवन, मुख और हाथ पाँव का क्या वर्णन करूँ, महज नूर ही नूर है। नूर का समुद्र कहूँ तो भी नहीं बनता। एक पदम पालंग घेर सत्तलोक का है।[115]

इसी प्रकार का वर्णन अनुराग सागर में भी किया गया है –

इन्द्रमती सुनो कथा सुहावन। तोहि समुझाय कहों गुण पावन।।
देश हमार न्यार तिहुँ पुरते। अहिपुर नरपुर अरु सुरपुरते।।
तहाँ नहीं यमकेर प्रवेशा। आदि पुरुष को जहवां देशा।।
सत्यलोक तेहि देश सुहेला। सत्य नाम गहि कीजे मेला।।
अद्भुत ज्योति पुरुष की काया। हंसन शोभा अधिक सुहाया।।
आदि पुरुष शोभा अधिकारा। पटतर काहि देहुँ संसारा।।
द्वीपकरी शोभा उजियारी। पटतर देहुँ काहि संसारी।।
यहि तीनों पुर अस नहिं कोई। जाकर तटपर दीजै सोई।।
चन्द्र सूर यहि देश मझारा। इन सम नहिंऔर उजियारा।।
एक रोम की शोभा ऐसी। और वदन की वरणों कैसी।।
ऐसा पुरुष कान्ति उजियारा। हंसन शोभा कहों विचारा।।
एक हंस जस षोडशभाना। अग्रवासना हंस अघाना।।
तहँ कबहुँ यामिनि नहीं होई। सदा अजोर पुरुष तन सोई।।

कहा कहौं कछु कहत न आवै। धन्य भाग जे हंस सिधावै।।
ताहि देश ते हम चलि आये। करुणामय निज नाम धराये।।[116]

इन्द्रमती प्रसंग में कबीर साहब कहते हैं कि यह सतलोक आकाश, पाताल और पृथिवी लोक सभी से न्यारा है। यह आदि पुरुष का देश है। यहाँ यमराज (निरंजन) का प्रवेश नहीं है। यह सत्यलोक अत्यन्त सुन्दर है और सत्तनाम द्वारा ही इससे तारतम्य स्थापित किया जा सकता है। सत्तपुरुष, आदिपुरुष का स्वरूप महातेजवान् एवं सौन्दर्यवान् है। यहाँ हंस (जीव) विलास करते हैं। सतलोक के समान प्रकाश और सौन्दर्य संसार में कहीं नहीं है। यहाँ अनेक चन्द्र तथा सूर्यों का प्रकाश है।

सत्य पुरुष का एक रोम अनेक सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाश से युक्त है, सम्पूर्ण शरीर की कान्ति और तेज का वर्णन किया ही नहीं जा सकता। यहाँ प्रत्येक हंस का प्रकाश सोलह सूर्यों के बराबर है। वे सभी हंसअगरु इत्रादि की सुगन्ध से अघाये रहते हैं। यहाँ कभी रात्रि नहीं होती है। वे जीव धन्य हैं जो सतलोक में गति प्राप्त करते हैं। मैं कबीर इसी सतलोक से चलकर आया हूँ और इस युग में मेरा नाम करुणामय है।

अनुराग सागर में सन्त कबीर साहब ने चेतना के भण्डार सतलोक का वर्णन तथा अंकूरी जीवात्माओं का सतपुरुष में लय का वर्णन विविध प्रसंगों में किया है। अनुराग सागर के षोडश सुतोत्पत्ति प्रसंग में चेतन लोकों के सुख, आनन्द, तेज एवं प्रकाश का कथन है। समस्त सृष्टि का आधार शब्द है। परम शक्ति से सर्वप्रथम शब्द का प्रकटीकरण हुआ तदनन्तर विविध लोकों की रचना हुई। पुहुप द्वीप (पुष्पद्वीप) में जब पुरुष चार कली वाले सिंहासन पर विराजमान हुए और अपनी कला धारण की तो वहाँ सुगन्ध ही सुगन्ध हो गई।

पुरुष कलाधार बैठे जहिया।
प्रगटी अगर बासना तहिया।।[117]

इन द्वीपों में परम शक्ति के अशं स्वरूप पुत्रों का भोजन सुगन्ध रूपी अमृत है जिसे पान कर वे सभी रसमग्न रहते हैं।

अंशन शोभा कला अनन्ता। होत वहाँ सुख सदा बसन्ता।।
अंशन शोभा अगम अपारा। कला अनन्त को वरणै पारा।।
सब सुत करें पुरुष को ध्याना। अमी अहार सदा सुख माना।।[118]

इन सभी द्वीपों में सत पुरुष के प्रकाश से ही उजाला हो रहा है। सतपुरुष के एक रोम का प्रकाश करोड़ों चन्द्रमा से भी अधिक है। परम पुरुष से निकलने वाले तेज से ही नीचे की रचना के समस्त द्वीप प्रकाशमान हो रहे हैं।

द्वीपकरी को अनत शोभा, नहि बरणतसो बने।।
अमित कल अपार अद्भुत, सुनत शोभा को गने।।
पुर के उजियार से सुन, सबै द्वीप अजो रहो।।
सतपुरुष रोम प्रकाश एकहि, चन्द्र सूर्य करो रहो।।[119]

वह सतपुर, सतलोक या सचखण्ड आनन्द और सुखों का स्थल है। वहाँ शोक, मोह और दुःख नहीं है। वहाँ के हंस सतपुरुष का दर्शन पाकर प्रसन्न होते हैं। यह दर्शन रूपी अमृत ही उनका आहार है।

सतपुरुष आनँधाम, शोक मोह दुःख तहँ नहीं।
हंसन को विश्राम, पुरुष दरश अँचवन सुध।।[120]

अनुराग सागर में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारों युगों में घटित हुए विविध वृत्तान्तों में सतलोक का कथन है। सतयुग में धुंधल बादशाह तथा खेमसरी प्रसंगों में चेतन लोक, सतलोक, हंसजीवों व उनके परमानन्द आदि विषयों का उल्लेख है।

धुंधल बादशाह के प्रसंग में वर्णित है कि कबीर साहब ने धुंधल को नामदान किया तथा उसे निजस्वरूप से परिचित कराया। धुंधल भी दृढ़ विश्वास के साथ शब्द–अभ्यास करते रहे और उन्हें परम चैतन्य शक्ति परमात्मा के दर्शन हुए। धुंधल बादशाल की चेतना सदैव परम चेतना में लय रहती थी और वे पलभर के लिए भी सत्सुकृत जी (कबीर साहब) से दूर नहीं होते थे।

राय धोंधल सन्त सज्जन, शब्द मम दृढ के गह्यो।।
सत्य शब्द तिन हमरो माना, तिन कह दीन पान परमाना।।[121]

खेमसरी वृतान्त में वर्णित है कि सत्सुकृत (कबीर साहब) जी की दया से खेमसरी की सुरत (आत्मा) सतलोक या सचखण्ड में पहुँच गई और उनकी आत्मा ने परम चैतन्य शक्ति परमात्मा के दर्शन किये। उस समय खेमसरी की देह तो मर्त्यलोक में ही थी, सत्सुकृत जी की परम कृपा से खेमसरी की आत्मा को परमात्मा के साथ मिला कर परमात्मा का रूप (लय) कर लिया। सत्सुकृत जी खेमसरी की आत्मा

(चेतना) का परमात्मा (परम चेतना) में लय कराके पुनः इस मर्त्य लोक में ले आये पुनः देह में आकर खेमसरी पश्चात्ताप करने लगी और पुनः उसी काल–क्लेश मुक्त चेतन देश में जाने के लिये सत्सुकृत जी से याचना करने लगी।

तब सत्सुकृत जी खेमसरी को समझाते हुए कहते हैं कि जब तक तुम उस स्थान के जाने योग्य नहीं हो जाती तब तक नाम भक्ति अर्थात् सतनाम का उच्चारण करती रहो। मेरी अनुकम्पा से तुमने मेरे (निज) स्वरूप तथा निज चेतन लोक के तो दर्शन कर ही लिये हैं साथ ही यह भी निश्चित है कि एक बार दिव्य एवं अलौकिक स्वरूप एवं चेतन लोक के दर्शन करके पुनः जीवात्मा को भवसागर में नहीं आना पड़ता।

जब लग टीका पूर न भाई। तब लग रहो नाम लौ लाई।।
तुम तो देखा लोक हमारा। जीवन को उपदेशहु सारा।।[122]

खेमसरी के परिवार के सदस्यों को भी सत्सुकृत जी ने नाम–दान किया। शब्द श्रवण कराके उन हंस जीवों को जन्म–जन्म के आवागमन चक्र से मुक्त कर दिया। सतयुग में उन्होंने बारह जीवों को नामदान कर दिव्य चेतन लोक के दर्शन कराये।

हंस द्वादश बोधि सतगुरु, गयउ सुख सागर करी।।
सतपुरुष चरण सरोज परसेउ, विहसिके अंकम भरी।।

उस समय जिन बारह जीवों को नाम दिया और उनको सतपुरुष से मिलाया उन जीवों ने पुरुष की लीला देखी। जैसे बिन्दु; सिन्धु में मिलकर आनन्दित होती है, उसी प्रकार उन जीवों की गति परमात्मा जैसी हो गई और वे आनन्दित होने लगे। उन हंसों में प्रत्येक का प्रकाश सोलह सूर्यों के बराबर अपना हो गया।

बुझि कुशल प्रसन्न बहुविधि मूल जीवन के धनी।।
बंधु हर्षित सकल शोभा, मिली अति सुन्दर बनी।।
शोभा बरणि न जाय। धर्मानि हंसन का कान्तिकर।।
रवि षोडश शशिकाय, एक हंस उजियार जौ।।[123]

उस सतलोक में केवल हंस जीव ही रहते हैं और वे परमशक्ति की प्रकाश चेतना से सदैव प्रकाशित होते रहते हैं। उस चेतन लोक की शोभा भौतिक चर्म चक्षुओं से नहीं देखी जा सकती। वह सतलोक चेतना का परम भण्डार है।

सत्यलोक हंसन सुख पावा। सदा बसन्त पुरुष के पासा।।
सो देख जो पहुँचे जाई। जिन यहि रचा सो कहा चिताई।।[124]

त्रेता–युग में मुनीन्द्र (कबीर) साहब ने लंका में विचित्र नामक व्यक्ति को मुक्ति का मार्ग बताया। विचित्र को मुनीन्द्र जी की कृपा से घंटा, शंख आदि चेतन लोकों के शब्द सुनाई दिये। चेतन शब्द श्रवण के साथ उसकी डोर चेतन लोक में चेतन शक्ति के साथ बाँध दी गई।

सुनि विचित्र तबहि भ्रम भागा। अति अधीन ह्वै चरणन लागा।।

x x x x x

आनेहु भाव सहित सब साजा। आरति कीन्ह शब्द धुनि गाजा।।

x x x x x

सुमिरण ध्यान ताहिसों भाखा। पूरण डोरि गोय नहिं राखा।।[125]

रावण की पत्नी मन्दोदरी को भी मुनीन्द्र जी ने नाम–दान किया और उनकी कृपा से मन्दोदरी ने अपने अन्दर उस दिव्य–चेतना का अनुभव किया। रानी की चेतना की डोर भी परमात्मा से बँध गई।

कहे मँदोदरि शुभ दिन मोरी। बिनती करों दोउ कर जोरी।।

x x x x x

सुनहु वधू प्रिय रावण केरी। नाम प्रताप करे यम बेरी।।

x x x x x

दीन्हों ताहि पान परवाना। पुरुष डोर सोंप्यो सहदाना।।

गद्गद् भई पाय घर डोरी। मिलि रंकहि जिमि द्रव्य करोरी।।[126]

त्रेता युग में लंका में रावण का अपमान कर मुनीन्द्र जी अवध पहुँचे और वहाँ अति दरिद्र मधुकर विप्र पर दया कर उसे नाम देकर सीधे सतलोक में ले गये। मधुकर विप्र के साथ सोलह अन्य जीवों को नामदान कर उन्हें भी सतलोक पहुँचाकर चेतन पुरुष एवं चेतन लोक के दर्शन करा दिये।

मधुकर घर षोडश जिव रहई। पुरुष संदेश सबनसों कहई।।

x x x x x

षोडश जिव परवाना पाये। तिन कहँ लै सतलोक पठाये।।

कबीर साहब धर्मदास से कहते हैं कि इस सतलोक का रूप–स्वरूप अति विचित्र है। कोई विरला हंस–जीव ही इस गुप्त (Potential Form) तथा प्रकट (Kinetic)

रूप को समझ सकता है। यहाँ सभी हंस परमात्मा में लय करने पर अमर–चीर पहन लेते हैं अर्थात उनका दिव्य स्वरूप हो जाता है। उस चेतन सतलोक में सोलह सूर्यों का प्रकाश प्रत्येक आत्मा का अपना प्रकाश हो जाता है। उनका भोजन अमृत होता है। चेतन पुरुष की शोभा अनन्त है। सभी हंस जीव चन्दन तथा अगरु की सुगन्ध का पान करते हैं।

हंसन अगर चीर पहिराये। देह हिरम्मर लखि सुख पाये।।
षोडश भानु हंस उजियारा। अमृत भोजन करे अहारा।।
अगर वासना तृप्त शरीरा। पुरुष दरश गदगद् मति धीरा।।[127]

द्वापर युग में रानी इन्द्रमती प्रसंग में कबीर साहब निर्मल–पावन चेतन देश सतलोक का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मर्त्यलोक हमारा देश नहीं है, मैं तो उस देश का रहने वाला हूँ जहाँ यमदूत तो जा ही नहीं सकते साथ ही उनका अधिपति निरंजन भी वहाँ जाने की शक्ति नहीं रखता। वह सतलोक एक बहुत ही सुन्दर लोक है, वहाँ सतनाम है। सतनाम के सुमिरन से ही हम उस लोक में जा सकते हैं। उस लोक के चेतन पुरुष का स्वरूप भी परम ज्योतिर्मय एवं चेतनमय है। उस चेतन लोक के चेतन हंसों का सौन्दर्य भी अवर्णनीय है।

उस द्वीप जैसी सुन्दरता, प्रकाश तथा तेज तीन लोकों में नहीं है। यहाँ अनेक चन्द्र तथा सूर्य हैं तथा चेतन पुरुष के एक रोम के तेज से करोड़ों चन्द्रमा लज्जित होते हैं। जब एक रोम इतना नूर व तेज से युक्त है तो सम्पूर्ण शरीर का क्या कहना। वहाँ कभी रात्रि नहीं होती।

सत्य लोक की ऐसी बाता। कोटिक शशि इक रोम लजाता।।
एक रोम की शोभा ऐसी। और वदन की वरणों कैसी।।
ऐसा पुरुष कान्ति उजियारा। हंसन शोभा कहों बिचारा।।
एक हंस जस षोडश भाना। अग्र वासना हंस अघाना।।
तहँ कबहूँ यामिनी नहिं होई। सदा अजोर पुरुष तन सोई।।[128]

तक्षक सर्प से काटने के पश्चात् यमदूतों से मुक्त कराके कबीर साहब; रानी इन्द्रमती को; मान सरोवर में स्नान कराके चेतन–सागर कबीर सागर में स्नान कराते हैं तथा अमृत पान कराते हैं। उस परम चेतन लोक में रानी की आत्मा का प्रकाश सोलह सूर्यों के बराबर हो गया। चेतन जीवात्मा चेतन समुद्र में लय हो गई अर्थात रानी की हंस आत्मा परमात्मा का रूप हो गई।

प्रथमहिं रानी कीन्हों संगा। मेट्यो काल कठिन परसंगा।।
तबही टीका पूर भराया। ले रानी सतलोक सिधाया।।
ले पहुँचायो मान सरोवर। जह्वां कामिनि करहिं कतोहर।।
अमी सरोवर अमीचखायो। सागर कबीर पांव परायो।।
तेहि आगे सुरति को सागर। पहुँची रानी भई उजागर।।[129]

कबीर साहब ने अनुराग सागर में यह भी वर्णित किया है कि जब कोई आत्मा त्रिलोक के काल–जाल से निकलकर सतलोक में प्रवेश करता है तो अन्य हंस आत्माएं उसका कुशल–क्षेम पूछती हुई उसके स्वागत में मंगल–गान करती हैं, आरती करती हैं और उस जीवात्मा को सराहती तथा सम्मान करती है जो सद्गुरु की दया से वहाँ पहुँचता है।

सकल हंस पूछी कुशलाई। कहु द्विज कुशल भये अब आई।।[130]

x x x x

लोक द्वार ठाढ़े तब कीन्ही। देखत रानी अति सुख भीनी।।
हंस धाय अंक में लीन्हा। गावहिं मंगल आरति कीन्हा।।
सकल हंस कीना सनमाना। धन्य हंस सतगुरु पहिचाना।।[131]

सभी हंस–जीव नवागत हंस आत्मा को पुरुष के दर्शन तथा शीशनमन (माथा टेकने) को ले जाते हैं और बड़े कुतूहल के साथ मंगल–गान करते है, स्तुति करते है तथा आनन्द मनाते है।

चलो हंस तुम हमारे साथा। पुरुष दरश करि नावहु माथा।।
इन्द्रमती आवहु संग मोरे। पुरुष दरश अब होवें तोरे।।
इन्द्रमती अरु हंस मिलाहीं। करहिं कुतूहल मंगल गाहीं।।
चलत हंस सब अस्तुति लावें। अब तो दरश पुरुष को पावें।।[133]

कबीर साहब ने चेतन पुरुष के समक्ष उपस्थित हो प्रार्थना की कि मर्त्यलोक के काल–जाल से निकल कर एक जीवात्मा (रानी इन्द्रमती) आपके दर्शन के लिए उपस्थित है। परमचेतन परमपुरुष ने कबीर साहब से कहा कि तुमने एक हंस के हित के लिए मुझे बुलाया है। उस आत्मा को यहाँ ले आओ जिससे वह मेरा दर्शन कर सके। परमात्मा वहाँ पर सूक्ष्म रूप में पुहुप या कमल–पुष्प के रूप में थे, रानी ने उस स्वरूप के दर्शन किये। जितने हंस जीव रानी के साथ गये, सभी ने 'पुरुष' को

दण्डवत् प्रणाम किया और चरणों में शीश नवाया। चेतन पुरुष ने कबीर साहब को चार अमी (अमृत) फल दिये जिनको कबीर साहब ने सभी हंस जीवों को प्रसाद रूप में वितरित कर दिया।

विकस्यो पुहुप उठी अस बानी। सुनहु योग संतायन ज्ञानी।।
हँसन कहँ अब आव लिवाई। दरश कराई लेउ तुम आई।।[133]
करहिं दण्डवत हंस सबही, पुरुष पहँ चित लाइया।।
अमी फल तब चार दीन्हों, हंस सब मिल पाइया।।[134]

सभी सन्तों ने सत्तलोक में 'पुहुप' का वर्णन किया है जैसे –

पुहुप मध्य से उठी अवाजा।
को तुम हो, आये केहि काजा।। 10।।[135]

तथा

पोहप माहिं से उठी अवाजा। आये कहा कौन केहि काजा।।[136]

तथा

स्रुत लुभाय रही पोहप पर, रस सुगन्ध के साथ।[137]
पोहप नगर जहाँ अमृत धाम।
हंस बसें पावें विश्राम।।[138]

सूर्य के प्रकाश से जैसे कमल खिल उठते हैं उसी प्रकार हंस जीव सतपुरुष के दर्शन से खिल उठे। उनके अनेक जन्मों के दुःखों का नाश हो गया और वे आनन्द–विलास करने लगे।

जस रवि के परकाश, दरश पाय पंकज खुले।
तैसे हंस विलास, जन्म–जन्म दुख मिटि गयो।।[139]

चेतन भण्डार सतलोक में परम पुरुष और करुणामय को एक ही रूप में अवलोकन कर रानी इन्द्रमती अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गई।

कह रानी यह अचरज आही। भिन्न भाव कहु देखों नाहीं।।
जे कोइ कला पुरुष कहँ देखा। करुणामय तन एक विशेषा।।
धाय चरण गह हंस सुजाना। हे प्रभु तब चरित्र सब जाना।।
तुम सतपुरुष दास कहलाये। यह शोभा कस कहां छिपाये।।
मोरे चित यह निश्चय आई। तुमहि पुरुष दूजा नहि भाई।।[140]

वस्तुतः परम शक्ति और उसके अवतारों में लेश मात्र भी भेद नहीं है। इनका सम्बन्ध जल और उसकी तरंगों के सदृश है। पुनः इन्द्रमती कबीर साहब से कहती हैं –

अंग हमार रूप अति सोही। इक संशय व्यापे चित मोही।।

अर्थात मेरा प्रकाश तो षोडश भानुवत् हो गया है किन्तु मेरे मन में एक मोह जाग रहा है कि मेरा राजा चन्द्रविजय जिसके कारण मैं समस्त धार्मिक अनुष्ठान कर सकी, उसे भी यहाँ आना चाहिये। मर्त्यलोक में जब मैंने आपकी भक्ति की तो राजा ने मुझे कभी रोका नहीं था। यदि राजा मुझे आपकी सेवा के निमित्त स्वीकृति न देता तो मैं इस लोक तक कैसे आ सकती थी।

इन्द्रमती की प्रार्थना पर कबीर साहब पुनः मर्त्यलोक आकर अवध के पास गढ़–गिरनाल पहुँचते हैं और उस राजा को यमदूतों से मुक्त कराके उसे सतनाम का परिचय कराके सतलोक ले जाते हैं।

धन्य राय सुज्ञान, आनहु ताहि हंस।।
तुम गुरु दया निधान, भूपति बंद छुड़ाइये।।[141]

राजा चन्द्र विजय रानी इन्द्रमती से कहता है कि तुम तो षोडश रवि के प्रकाश से युक्त हो, मैं तुम्हें रानी कैसे कह सकता हूँ। तुम्हारे गुरु धन्य हैं। तुमने अपने गुरु की बहुत भक्ति की है और मैं तुम्हें रानी कहने योग्य नहीं हूँ। किन्तु तुम्हारी भक्ति से ही मैंने निज़ लोक पाया है। तुम्हारे गुणों का वर्णन मैं नहीं कर सकता। धन्य है ऐसी नारी जिसे परमात्मा ने मुझे दिया।

राय कहें सुनु हंस सुजाना। वरण तोर षोडश शशि भाना।।
अंग–अंग तोरे चमकारी।कैसे कहों तोहि मैं नारी।।

x x x x

धन्य गुरु अस भक्ति दृढ़ाई। तोरि भक्ति हम निज घर पाई।।

x x x x

तव गुण मोहि वरण न जाई। धनगुरु धन्य नारि हम पाई।।

x x x x

सत्य है कि भक्त तो परम शक्ति की दया का पात्र होता ही है, उसे सुविधा, सहायता एवं अनुकूल वातावरण एवं प्रत्येक धार्मिक कार्य में सहयोग करने वाला भी दया पात्र होता है।

द्वापर युग में ही करुणामय (कबीर साहब) जी भक्त सुपच सुदर्शन के कर्मचक्र तथा आयु के पूर्ण हो जाने पर उसे सतलोक ले गये। सतलोक पहुँचकर वह सुपच सुदर्शन हंसात्मा भी चेतन पुरुष का रूप हो गया और उसका प्रकाश सोलह सूर्यों के बराबर हो गया। वह जीवात्मा अन्य आत्माओं के साथ आनन्द मग्न हो गया और हंस जीव परम चेतन पुरुष के दर्शन हेतु वहाँ एकत्रित हो गये।

जबै सुदर्शन ठेका पूरा। ले सतलोक पठायो सूरा।।
मिले रूप शोभा अधिकारा। हंसन संग कुतूहल सारा।।
षोडश भानु रूप तब पावा। पुरुष दर्श सो हंस जुड़ावा।।[142]

कलियुग में कबीर साहब ने नूरुद्दीन और नीमा, जिन्होंने मथुरा में पुनः जन्म लिया, दोनों ने दृढ़ भक्ति की और पुरुष (कबीर) के वचनों का विश्वास किया। उनके संस्कार दृढ़ हो गये। दोनों की भक्ति उन्हें सतलोक में ले जाती है और वे हंस–जीवों के साथ हंस गति की शोभा पाते है, आनन्द मनाते हैं और अमृतपान करते है तथा परम पुरुष के चरणों में लीन रहते हैं।

रतना भक्ति करे चित लाई। नारि पुरुष परवाना पाई।।
ता कहँ दीन्हेउ लोक निवासा। अंकूरी पठये निज दासा।।
पुरुष चरण भेंटे उर लाई। शोभा देह हंसकर पाई।।
देखत हंस पुरुष हरषाने। सुकृत अंश कही मन माने।।[143]

अनुराग सागर में कुछ ऊर्ध्व लोकों के विविध वाद्यों की धुनों का भी वर्णन है। धर्मदास को नाम–दान करने के पश्चात् उसे मृदंग, झिंझरी और ताल की धुनें सुनाई देने लगी थी।

चौका कीन्ह शब्द धुन गाजा। ताल मृदंग झांझरी बाजा।

कबीर साहब धर्मदास से कहते हैं कि हंस–जीव संसार में रहते हुए भी निर्भय हो कर सतनाम का उच्चारण करता है, सुमिरन करता है। ऐसा हंस–जीव विदेहमुक्त होकर अन्य हंस जीवों के साथ मिलकर अत्यन्त प्रसन्न होता है और आनन्द करता है, जैसे बिन्दु सिन्धु में जाकर सिन्धु रूप हो जाती है उसी प्रकार आत्मा सतलोक में परमात्मा से मिलकर परमात्म रूप परम चेतनमय हो जाता है।

हंस निर्भय निडर गाजई, सत्य नाम उच्चारई।।
हंस मिल परिवार निज, यमदूत सब झकमारई।।
आनन्द धाम अमोल, हंस तहां सुख बिलसहीं।।
हंसहि हंस कलोल, पुरुष कान्ति छवि निरखहीं।।[144]

अन्त में कबीर साहब धर्मदास से कहते हैं कि – यह अनुराग सागर सुरत और शब्द के मेल का खेल है। बिन्दु रूप आत्मा सतलोक रूपी चेतना के महा सागर में परम चेतन पुरुष में मिलकर तद्रूप हो जाती है। मानव; मनमति का त्याग कर सतगुरु के निर्देश में सद् गति प्राप्त कर सुख–सागर सतलोक में पहुँच जाता है। इस प्रकार हे धर्मदास आत्मा–परमात्मा का ही अंश है जो सिन्धु रूप परमात्मा में ही मिल जाती है।

शब्द सुरति का खेल, सतगुरु मिले लखावई।।
सिन्धु बुन्द को मेल, मिले तो दूजा को कहैं।।
मन की दशा विहाय, गुरु मारग निरखत चले।।
हंस लोक कह जाय, सुख–सागर सो लहै।।
बुन्द जीव अनुमान, सिंधु नाम सतगुरु सही।
कहै कबीर प्रमान, धर्मदास तुम बुझ हू।।[145]

इस प्रकार अनुराग सागर में तीन लोक के ऊपर चौथे लोक सतलोक का कथन है जहाँ काल–माया का प्रवेश नहीं है। यह सतलोक चेतना का अपार भण्डार है, अथाह सागर है। सद्गुरु कृपा से कर्म बन्धन मुक्त जीवात्मा इस लोक में महा तेजमय हो जाता है, महा प्रकाशमय हो जाता है। हंस जीवात्मा का तेज वहाँ विद्यमान पुरुष का तेज रूप अर्थात् षोडश भानु के तेज के समान हो जाता है। ऐसे तेजोमय हंस–जीव यहाँ नवागत हंस–जीवों का स्वागत करते है; कुशल क्षेभ पूछते और उसे भी पुरुष के दर्शनार्थ ले जाते हैं। पुहुप रूप (सूक्ष्म रूप) में विद्यमान पुरुष, (सद्गुरु कृपा से) उस लोक तक आये चेतन हंस को प्रसाद रूप में अमृत फल भी देते हैं। सभी जीवात्मा वहाँ विलास करते हैं, आनन्द करते है और कलोल करते है। जीवात्मा सिन्धु में बिन्दुवत् विलास करता रहता है। वहाँ अन्धकार नहीं हैं। वहाँ सुख, आनन्द, तेज, चेतना और प्रकाश ही प्रकाश है। सतलोक में पहुँचे हंस–जीव आवागमन के चक्र से रहित हो आनन्द और विलास में लीन रहते हैं।

सिन्धु बिन्दु का मेल, मिले तो दूजा को कहैं।

अस्तु ! कबीर साहब ने सत्तलोक में सत्त पुरुष का, उनके पुहुप रूप (सूक्ष्म स्वरूप) का उनके अवर्णनीय तेज कान्ति एवं सौन्दर्य का, हंस–जीवों की कान्ति (सोलह सूरज) एवं विलास का वर्णन किया है। नितान्त विशुद्ध उस लोक में निरंजन का प्रवेश नहीं है। सभी हंस अमृत पान करते है तथा सभी हंस जीव अगरु आदि की सुगन्धि से अघाये रहते है। सद्गुरु की दया एवं सतनाम के प्रभाव से ही जीव इस अवर्णनीय अवस्था तक पहुँच पाता है।

संदर्भ

1. अनुराग सागर, पृ. 5
2. अनुराग सागर, पृ. 146
3. अनुराग सागर, पृ. 1
4. अनुराग सागर, पृ. 59
5. अनुराग सागर, पृ. 144
6. अनुराग सागर, पृ. 59
7. अनुराग सागर, पृ. 59
8. अनुराग सागर, पृ. 147
9. अनुराग सागर, पृ. 147
10. अनुराग सागर, पृ. 148
11. अनुराग सागर, पृ. 147
12. अनुराग सागर, पृ. 145–146
13. अनुराग सागर, पृ. 146
14. अनुराग पृ. 147
15. अनुराग सागर, पृ. 148
16. अनुराग सागर, पृ. 148
17. अनुराग सागर, पृ. 149
18. अनुराग सागर, पृ. 149
19. अनुराग सागर, सोरठा 97, पृ. 149
20. अनुराग सागर, पृ. 59–60
21. अनुराग सागर, पृ. 104–105

22. अनुराग सागर, सोरठा, पृ. 113
23. अनुराग सागर, पृ. 105
24. कबीर, पृ. 33
25. अनुराग सागर, पृ. 120
26. अनुराग सागर, पृ. 120
27. अनुराग सागर, पृ. 120
28. अनुराग सागर, पृ. 120—121
29. अनुराग सागर, पृ. 121
30. अनुराग सागर, पृ. 121
31. अनुराग सागर, पृ. 121
32. अनुराग सागर, पृ. 122
33. अनुराग सागर, पृ. 122
34. अनुराग सागर, पृ. 122
35. अनुराग सागर, पृ. 123
36. अनुराग सागर, पृ 123
37. अनुराग सागर, पृ. 123
38. अनुराग सागर, पृ. 124
39. अनुराग सागर, पृ. 124
40. अनुराग सागर, पृ. 124
41. अनुराग सागर, पृ. 125
42. अनुराग सागर, पृ. 125
43. अनुराग सागर, पृ. 126
44. अनुराग सागर, पृ. 127
45. अनुराग साहब, पृ. 127—128
46. अनुराग सागर, पृ. 128
47. अनुराग सागर, पृ. 141
48. अनुराग सागर, पृ. 128
49. अनुराग सागर, पृ. 129

50. अनुरागर सागर, पृ. 140
51. अनुराग सागर, पृ. 141
52. अनुराग सागर, पृ. 141
53. अनुराग सागर, पृ. 140
54. प्रेमबानी, प्रथम भाग, मंगलाचरण, पृ. 3, फुटनोट 1
55. अनुराग सागर, पृ. 71, 72
56. अनुराग सागर, पृ. 72
57. अनुराग सागर, पृ. 72
58. अनुराग सागर, पृ. 72
59. अनुराग सागर, पृ. 74
60. अनुराग सागर, पृ. 75
61. अनुराग सागर, पृ. 85
62. अनुराग सागर, पृ. 113
63. अनुराग सागर, पृ. 112—114
64. अनुराग सागर, पृ. 114
65. अनुराग सागर, पृ, 127
66. अनुराग सागर, पृ. 158
67. अनुराग सागर, पृ. 158
68. अनुराग सागर, सोरठा 40, पृ. 53
69. अनुराग सागर, पृ. 56
70. अनुराग सागर, पृ. 144
71. अनुराग सागर, सोरठा 86, पृ. 124
72. अनुराग सागर, सोरठा 41, पृ. 54
73. अनुराग सागर, पृ. 10
74. अनुराग सागर, सोरठा 86, पृ. 124
75. अनुराग सागर, पृ. 79
76. कल्याण योगांक, पृ. 79
77. सुरत शब्द योग, सर साहब जी महाराज, कल्याण योगांक, पृ. 79
78. अनुराग सागर, पृ. 56

79. अनुराग सागर, सोरठा 44, पृ. 57
80. अनुराग सागर, पृ. 58
81. अनुराग सागर, पृ. 58
82. अनुराग सागर, पृ. 58
83. अनुराग सागर, पृ. 58–59
84. अनुराग सागर, पृ. 59
85. अनुराग सागर, पृ. 3
86. अनुराग सागर, सोरठा 2, पृ. 4
87. अनुराग सागर, पृ. 7
88. अनुराग सागर, सोरठा 5, पृ. 7
89. अनुराग सागर, पृ. 9
90. अनुराग सागर, पृ. 10
91. अनुराग सागर, पृ. 11
92. अनुराग सागर, पृ. 11
93. अनुराग सागर, पृ. 6
94. अनुराग सागर, पृ. 63
95. अनुराग सागर, पृ. 64
96. अनुराग सागर, सोरठा 135, पृ. 135
97. अनुराग सागर, सोरठा पृ. 85
98. अनुराग सागर, सोरठा 8, पृ. 10
99. अनुराग सागर, पृ. 10
100. अनुराग सागर, पृ. 151
101. अनुराग सागर, पृ. 11
102. अनुराग सागर, सोरठा 9, पृ. 11
103. अनुराग सागर, सोरठा 108, पृ. 163
104. अनुराग सागर, सोरठा 110, पृ. 163
105. अनुराग सागर, सोरठा 111, पृ. 164
106. अनुराग सागर, सोरठा 113, पृ. 164

107. अनुराग सागर, पृ. 11
108. अनुराग सागर, पृ. 151
109. अनुराग सागर, सोरठा 12, पृ. 15
110. ऋग्वेद 1/22/18
111. सारबचन नज्म, अनु. 30, पृ. 81
112. सारबचन नज्म, अनु. 30, पृ. 12
113. सारबचन नज्म, पृ. 12
114. सारबचन नज्म, पृ. 13
115. सारबचन नज्म हिदायतनामा, पृ. 418–419
116. अनुराग सागर, पृ. 83–84
117. अनुराग सागर, पृ. 14
118. अनुराग सागर, पृ. 15
119. अनुराग सागर, पृ. 15
120. अनुराग सागर, सोरठा–12, पृ. 15
121. अनुराग सागर, पृ. 69
122. अनुराग सागर, पृ. 70
123. अनुराग सागर, पृ. 73/52, 55
124. अनुराग सागर, पृ. 73
125. अनुराग सागर, पृ. 74
126. अनुराग सागर, पृ. 75
127. अनुराग सागर, पृ. 79
128. अनुराग सागर, पृ. 84
129. अनुराग सागर, पृ. 90
130. अनुराग सागर, पृ. 79
131. अनुराग सागर, पृ. 90–91
132. अनुराग सागर, पृ. 91
133. अनुराग सागर, पृ. 91
134. अनुराग सागर, पृ. 91, छन्द 63
135. सारबचन नज़म, पृ. 541

136. सन्त तुलसी साहब, पद्म सागर, पृ. 138
137. सन्त तुलसी साहब, पद्म सागर, पृ. 138
138. सार बचन नज़्म, बारहमासा, पृ. 817, कड़ी 30
139. अनुराग सागर, पृ. 91
140. अनुराग सागर, पृ. 92
141. अनुराग सागर, पृ. 94
142. अनुराग सागर, पृ. 98
143. अनुराग सागर, पृ. 109
144. अनुराग सागर, पृ. 163
145. अनुराग सागर, पृ. 164 / 112–114